यमगाथा

दूधनाथ सिंह



(इस नाटक को मंचित या किसी भी रूप में उद्धृत करने के लिए लेखक की अनुमति आवश्यक है)

प्रकाशक :
लोकभारती प्रकाशन
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद।

प्रथम संस्करण
1989

मूल्य : 50/-

20/- P.B

मुद्रक :
नवीन प्रिंटिंग प्रेस
इलाहाबाद।

फोटो टाइप सेटिंग :
ऊषा प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद

आवरण तथा अन्तः सज्जा
अशोक भौमिक

मलयज, पाश
सफदर हाशमी, गोरख पाण्डेय
की स्मृति को

कथा प्रसंग : कुछ सोच-विचार

ऋग्वेद (10-95) में पुरूरवा की कहानी अट्ठारह सूक्तों में निबद्ध है। ये सूक्त बुनियादी तौर पर सम्वादात्मक हैं। यानी कुल मिलाकर यह एक दुःखभरी बातचीत है, जिसका मुख्य स्वर विलाप, स्मरण, मृत्यु-भय और भविष्य चिन्ता का है। और जिसका अन्त इस तरह होता है कि, घबराने की कोई बात नहीं...'पुरूरवा 'मृत्यु-बन्धु' है, उसे स्वर्ग मिलेगा।' इस तरह इस कहानी का अन्त, इस अत्यन्त संवेदनशील विलाप और स्मरण का अन्त मौत के सांत्वनापूर्ण आँगन में होता है, जिसे स्वर्ग कहते हैं।

जाहिर है कि पुरूरवा, उर्वशी द्वारा दिये गये इस आश्वासन से संतुष्ट नहीं होता। वह उसे आँखों के सामने से दूर हट जाने को कहता है। वह मृत्यु भय से काँप रहा है। उसके मंत्र, जिनका गायन एक नये युग का निर्माण कर सकता था, अनगाये रह गये हैं। वह, जो एक ही तीर से हजारों गायों को जीत लेता था, वह, जिसे नदियाँ, समुद्र, पर्वत और वन संवर्द्धित करते थे – इस तरह निहत्था, निरर्थक और अवश हो गया है ... वह जो देवताओं का हथियार बनने लायक नहीं रह गया – अब सिर्फ 'मृत्युबन्धु' है, जिसे उर्वशी स्वर्गानन्द की सांत्वना देती है।

इति त्वा देवा इम आहु ऐल ! यथेमेदत् भवसि मृत्युबन्धुः।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति, स्वर्गँ उ त्वमपि मादयासे ॥ (10-95-18)

'ओ इला के पुत्र ! (पुरूरवा) देव-गण तुझसे कहते हैं कि – क्योंकि तू मृत्यु-बन्धु है, यानी तेरी मृत्यु अब निश्चित है, अतः देवताओं के यज्ञ में हवि (स्वर्ण, घृत, गोधूम, गौवें और दास) तेरी प्रजा (सन्तान) देगी। और तू स्वर्ग में आनन्द करेगा।'

ऋग्वैदिक ऋषि इस सूक्त से क्या कहना चाहता है ? यानी वहाँ इस सूक्त की सार-वस्तु क्या है ? – देवताओं का सर्वाधिकार। यह कि, देवताओं ने पुरूरवा को देवासुर संग्राम के लिए संवर्द्धित किया था। वह शक्ति पुरूरवा ने उर्वशी के प्रेम में पड़कर खो दी। वह व्यर्थ और नाकारा हो गया... लेकिन वह बड़बोला भी था। इसलिए उसे रास्ते पर भेड़ियों द्वारा खाये जाने के लिए छोड़ नहीं दिया गया। बाकायदा उसकी बलि चढ़ायी गयी। उसे स्वर्ग दिया गया। बाकायदा।

निरर्थक और नाकारा ! किसके लिए ? देवताओं, आर्य-गणों और ऋषियों के निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए। अगर पुरूरवा सचमुच ऐसा ही महान 'क्षयी' था तो उसे 'भूलुंठित' हो जाने देना चाहिए था, उसे किसी वन-मार्ग पर 'भेड़ियों द्वारा खाये जाने के लिए' छोड़ दिया जाना चाहिए था। लेकिन नहीं, उसे तो स्वर्ग दिया गया। और उसकी सन्तानों को 'भविष्य हवि' के रूप में हस्तगत कर लिया गया — बाकायदा।

यही वह छिपी हुई बात है... यही इस सूक्त का निहितार्थ है, जिसमें मुझे नाटक लिए एक नयी और आधुनिक सार-वस्तु प्राप्त हुई।

अब जरा नीचे उतरकर ब्राह्मण-ग्रन्थों में इस कहानी के विकास पर गौर करें। और कुछ नहीं, सिर्फ इन ग्रन्थों में पुरूरवा के बारे में प्रयुक्त विशेषणों पर ध्यान दें। एक ओर तो उसे तेजस्वी, दानशील, ब्रह्मवादी, शत्रुओं द्वारा दुर्जेय, सत्यवादी, पुण्यमति, काम्य, मैथुन-संवृत्त, क्षान्त, धर्मज्ञ, राजर्षि और अग्नियों को लाने वाला कहा गया है। दूसरी ओर उसे अमानुषों से घिरा हुआ, ब्राह्मणों से विग्रह करने वाला, वीर्योन्मत्त, लोभी-लुटेरा, देवताओं और आर्य-गणों का दुश्मन, धर्म-पालन में अक्षम, पागल और यज्ञ-विध्वंसक तक बताया गया है। श्रीमद्भागवत्कार को उनके द्वारा दी गयी इस सूची से इतना घबरा गया है कि वह 'अहो मे मोह-विस्तारः कायकल्मष चेतसः' कहकर पुरूरवा से उसके धर्म-विरोधी कार्यों के लिए पश्चाताप भी करवाता है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का पुरूरवा पर सबसे गम्भीर आरोप क्या है ? यह कि वह यज्ञ-विध्वंसक है। वही यज्ञ जिसमें 'हविष्य' के रूप में पुरूरवा की प्रजाओं को हस्तगत करने की बात ऋग्वेदीय सूक्तकार ऊपर करता है। — यज्ञ क्या है ? श्रीपाद अमृत डांगे के अनुसार, 'यज्ञ आर्य साम्य-संघ की सामूहिक उत्पादन-पद्धत्ति का नाम है। वस्तुओं और सन्तानों को सामूहिक रूप से उत्पन्न करने की प्रणाली का नाम है — यज्ञ।' मतलब कि यज्ञ का अर्थ है — सामूहिक संवर्द्धन। — लेकिन यज्ञ का यह उपर्युक्त अर्थ तभी तक सम्भव है, जब तक एक वर्ग-समाज का जन्म न हुआ हो। वर्ग-समाज के पैदा होते ही यह यज्ञ शक्तिशाली प्रभु-वर्ग के लिए शोषण और संग्रह का एक विचारधारात्मक हथियार बन गया।

प्रकट है, न तो ऋग्वेद और न परवर्ती ब्राह्मण-ग्रन्थ, उस यज्ञ-प्रणाली का जिक्र करते हैं जिसकी परिभाषा डांगे करते हैं। वे तो उस काल-खण्ड की रचनाएँ हैं जब यज्ञ उनके लिए संग्रह-संचय का एक विशाल विधि-कर्म था। जब यज्ञ प्रभु-वर्गों द्वारा जनता के शोषण का एक शक्तिशाली अस्त्र था।

ऐसे समय में यज्ञ-विध्वंसक होने का क्या अर्थ है ? यज्ञ-विध्वंसक पुरूरवा के यज्ञ की स्वर्ण-वेदी के निकट ऋषियों-पुरोहितों द्वारा कुशा-वज्र से मारे जाने का क्या अर्थ है ? 'ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः सद्यः शप्तो व्यनशत्' (महाभारत—सम्भव पर्व - २२) का क्या अर्थ है ? — क्या सम्पत्ति-संग्रह और शोषण के इस वर्णवादी अस्त्र के खिलाफ... राजा और पुरोहित की इस मिली-भगत के खिलाफ पुरूरवा का हथियार उठाना और मारा जाना ? क्या इसीलिए पुरूरवा ऋग्वेद में कहता है कि, 'अगर हमारे मंत्र अनगाये रह गये तो वे चिरकाल तक असफल रह जायेंगे ?'

यही इस लेखक का वह मानस बिम्ब है, जो इस नाटक की रचना में प्रयुक्त हुआ है । और इसी रूप में इस 'मिथक' की पुनर्रचना को एक अद्‌भुत और सर्वथा नया आयाम मिलता है । और उसमें ऐतिहासिक सामाजिक विकास की एक गतिमान श्रृंखला को लक्षित किया जा सकता है ।... लेकिन ऐसा नहीं है कि यह इस लेखक द्वारा सर्वथा आरोपित मानसिक बिम्ब है।

अगर कालिदास के महान रोमैण्टिक घटाटोप से बाहर निकल आयें तो वास्तविकता तो यह है कि इस वर्ग-युद्ध की प्रभूत सामग्री और अनेक संकेत पुरूरवा के 'मिथक' में बिखरे पड़े हैं । उन्हें सिर्फ एक नयी जगह से — 'अर्श के इधर से' — खड़े होकर देखने, एकत्र करने और पिरोने की जरूरत थी । और ऐसा करते हुए मुझे संतोष है कि इस 'मिथक' को एक आधुनिक अर्थ देते हुए भी, मैं मूल कथा के अत्यधिक निकट बना हुआ हूँ ।... किसी 'मिथक' से, जो निश्चय ही इतिहास और निश्चित कालावधि का प्रमाण नहीं बन सकता, यही किया जा सकता है कि उसमें अपने काल-खण्ड के गतिमान, यथार्थ को प्रतीक-बिम्बों से पुनर्रचित किया जाय....

तो, सम्भवतः इसी वर्ग-विरोध के चलते पुरूरवा को एक ओर तो (जिनको यज्ञों के शोषण से वह मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करता है) तेजस्वी, क्षान्त, दानशील, सत्यवादी, अग्नियों को लाने वाला राजर्षि कहा गया है, तो दूसरी ओर (जिन सत्ताधारी लुटेरे वर्गों के विचारधारात्मक अस्त्र को वह नष्ट करने का प्रयत्न करता है) उसे यज्ञ-विध्वंसक, लोभी-लुटेरा, ऋषियों आर्य-गणों और देवताओं का दुश्मन और अमानुषों से घिरा हुआ बताया गया है । जो पुरूरवा ऋग्वेद में देवासुर-संग्राम के लिए नालायक साबित हो जाता है, वही ब्राह्मण-ग्रन्थों में आकर लोभी-लुटेरा, दुश्मन और पागल (नष्ट संज्ञः) दीखने लगता है ।... इस तरह इस कहानी के विकास में ऋग्वेद और ब्राह्मण-ग्रन्थों में एक आन्तरिक संगति बैठती है ।... हालाँकि जब ब्राह्मण-ग्रन्थ पुरूरवा के बारे में प्रयुक्त प्रशस्तियों और गालियों को अपने 'सब कुछ समेटने' के चिर-परिचित अभ्यास के कारण एक ही जगह छन्दबद्ध करते हैं तो वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि एक ही व्यक्ति एक खास तरह के समाज के लिए, पागल और धीमान्, पापी और पुण्यात्मा — दोनों एक साथ कैसे हो सकता है, अगर उस समाज में विरोधी वर्गों का अस्तित्व न हो ।

वसिष्ठ के बारे में कुछ बातें । वसिष्ठ ऋग्वैदिक वसिष्ठ है । उसके जन्म की कहानी काफी उलझी हुई है । लेकिन कुछ बातें साफ हैं । जैसे कुम्भ से उसका जन्म । जन्म से अनार्य । श्याम वर्ण । देवताओं द्वारा प्रारम्भिक संरक्षण । बिजली की चमक से घिरा हुआ । ऋग्वेद में 'उषा' और 'यम' सम्बन्धी मंत्रों का रचयिता । मित्र और वरुण के संयुक्त वीर्य से उत्पन्न आदि।

मित्र और वरुण के संयुक्त वीर्य से ही, दसवें पुत्र की इच्छा रखने वाले मनु को (नियोग द्वारा ?) इला नामक पुत्री पैदा हुई । इसी नाते (और वसिष्ठ की नैतिक निष्ठा और महान आदर्शों के कारण) इला, वसिष्ठ को नाटक में एक जगह 'मेरे प्रिय इकलौते भाई' कह कर सम्बोधित करती है । वसिष्ठ के बारे में ऋग्वेद का एक सूक्त है — 'उभौ वर्णौ पुपोष..' अर्थात् दोनों वर्णों (आर्यों-अनार्यों...मनुष्यों और तथाकथित दस्युओं) का पोषण करने वाला । ऋग्वेद की ये सूचनाएँ कथा को एक नयी रंगत देने के लिए काफी हैं । जहाँ तक इन्द्र और वसिष्ठ के सम्बन्धों का सवाल है, वह मेरे द्वारा कल्पित है । लेकिन इस कल्पना का भी दृढ़ मिथकीय आधार है । ऋग्वेद में 'उषा' एक महान देवी है । उसकी महानता का जिक्र पहले, तीसरे, चौथे और सातवें मण्डलों में अत्यन्त विस्तार से हुआ है । सातवें मण्डल के मंत्र तो स्वयं वसिष्ठ द्वारा रचे हुए हैं । वसिष्ठ कहते हैं — 'अभूदुषा इन्द्रतमा मघोनी...' उषा इन्द्र के समान

महनीय थी ।... और इन्द्र 'उषा' नामक मातृदेवी का हत्यारा है । ऋग्वेद में इस हत्या का अत्यन्त क्रूर वर्णन है :

अप उष अनसः सरत् सम्पिष्टादह बिम्युषी
ने वत्सी शिश्नथद वृषे ।
एददस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या ससार सीं परावतः (4-30-10-11)

इन्द्र ने विपाशा के तट पर 'उषा' की गाड़ी को चूर-चूर कर दिया । 'शिश्नथद वृषे'... का अर्थ-संकेत साफ है ।... इसी मातृदेवी की प्रशंसा और प्रार्थना में वसिष्ठ गीत लिखता है । लगातार लिखता है । कोई समझौता नहीं करता । इन्हीं संकेतों पर इन्द्र और वसिष्ठ के सम्बन्धों को कल्पित किया गया है । अनार्य होने और 'उभौ वर्णौ पुपोष' के आधार पर यह कल्पना की गयी है कि वे आर्य और अनार्य संस्कृतियों के सम्मिलन के पक्षधर थे । दस्युओं और दासों के बारे में उनके विचार भिन्न थे और इसीलिए रक्त और वर्ण की शुद्धतावादी विचारधारा वाले कठमुल्ला ऋषियों द्वारा बहिष्कृत, लेकिन अपने मौलिक कवित्व और गैरसमझौतावादी चरित्र के कारण चुपके-चुपके प्रशंसित और समादृत भी थे । यही वसिष्ठ एक विचारक और नये राजनीतिक दर्शन का प्रणेता है और अपने स्वप्न को साकार करने के लिए 'प्रतिष्ठान' में पुरूरवा को (वसिष्ठ वचनाच्चासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः'— हरिवंश -10-22) अभिषिक्त करता है ।

वसिष्ठ के नाम से ऋग्वेद में दो तरह के ऋक् संकलित हैं । 'उषा' के मंत्र और 'यम' के मंत्र । ये 'यम' के मंत्र क्या हैं ? व्याख्याएँ बहुत सी हो सकती हैं । लेकिन क्या यह देवताओं और आर्य-गणों द्वारा अपने विपक्षियों (दस्यु-गण और यज्ञों का विरोध करने वाला पुरूरवा) की विधि-सम्मत(?)हत्या का ही एक यथार्थ मंत्र-मय चित्रण तो नहीं है ? और क्या हमारे वर्ग-समाजों में सत्ताधारी वर्ग अपनी संहिताओं और न्यायपालिकाओं का निर्माण करके अपने विरोधियों की आज भी कानूनी (?) हत्याएँ नहीं कर रहे हैं ? इसी संकेतार्थ पर मैंने नाटक का नामकरण किया है — 'यमगाथा' । वैसे इस नामकरण का एक दूसरा आधार भी है । 'पुरुषमेध' के अवसर पर हत्या के बाद 'यमगाथा' का गायन ('यावन्तः वै मृत्युबन्धवस्तेषां यम आधिपत्यं परीयाय यमगाथाभिः परिगायति') होता था । इस गायन के द्वारा मृतक को यम के अधिकार से वापस लौटाने का रिवाज था । इस 'यमगाथा' की शब्दावली बहुत छानने पर भी मुझे नहीं मिल पायी । मैंने उसे रचने की कोशिश की है और उससे 'भरत-वाक्य' का काम लिया है ।

नाटक में उर्वशी के चरित्र में भारी और बुनियादी परिवर्तन मैंने किये हैं । उसका हजारों वर्षों का मिथकीय व्यक्तित्व, कालिदास का उत्कृष्ट रोमैण्टिक घटाटोप और रवीन्द्रनाथ की कविता (उर्वशी) — ये सब मेरे लिए चुनौती थे । रोमांस, विलास और ऋषियों की तपस्या-भंग करने वाली अधिष्ठात्री देवी... उर्वशी के भीतर क्या है ?... एक ऐसी स्त्री, जिसका अनादि-अनन्त शोषण, जिसकी अपरिवर्तित दासता, पितृसत्तात्मक समाज के भीतर कभी खत्म होती हुई नहीं लगती... लेकिन जिसके लिए वह लगातार प्रयास-रत है ।

नाटक के तीनों अंकों के मैंने अलग-अलग नामकरण किये हैं । कथा-क्रम के सांकेतिक विकास को समझने के लिए मुझे यह जरूरी लगा ।

और अन्त में इस नाटक में प्रयुक्त एक शब्द के बारे में। ऋग्वेद में 'गिरफ्तारी' के लिए एक शब्द प्रयुक्त हुआ है — 'प्रग्रहण'। शब्द मुझे नया और अच्छा लगा। अतः पुरूरवा की गिरफ्तारी के लिए मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है।

30 जनवरी, सोमवार।
1989।

दूधनाथ सिंह



अंक-क्रम



पात्र - परिचय

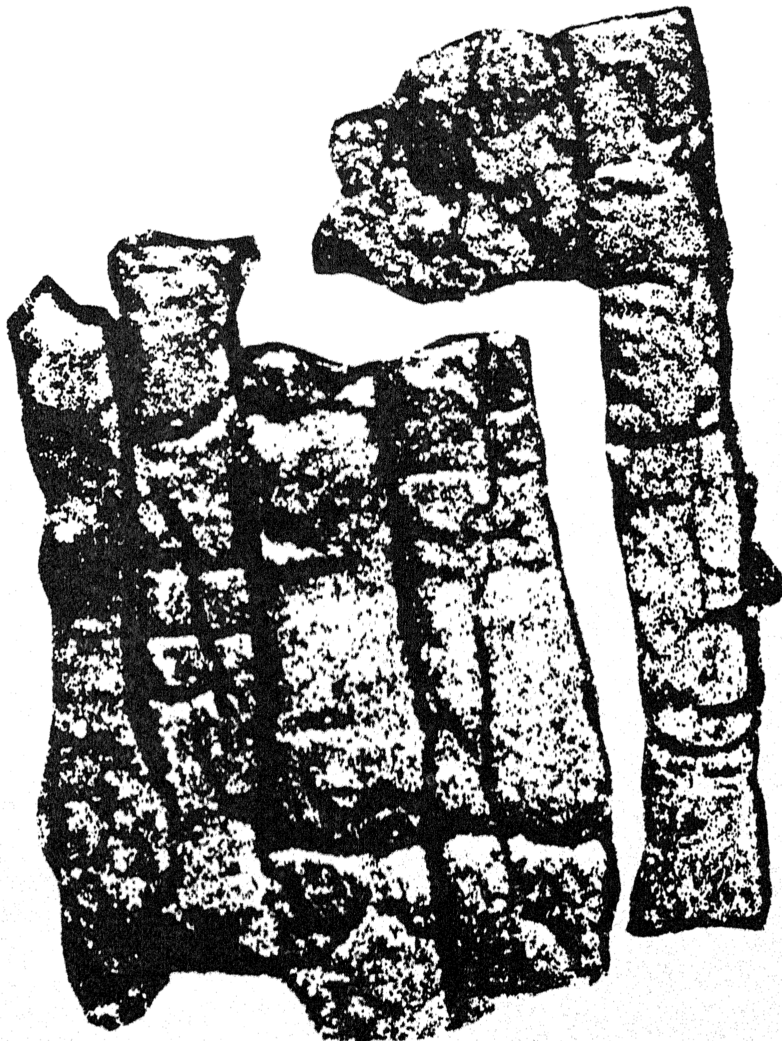
पुरूरवा - प्रतिष्ठान का सम्राट। इला का पुत्र। आयु बीस वर्ष।
वसिष्ठ - आचार्य। कवि। ऋषि। जन्म से अनार्य। ऋग्वेद में 'उषा' और 'यम' सम्बन्धी मंत्रों के रचयिता। पुरूरवा के परिपालक। गुरु और संरक्षक।
इला - मनु की पुत्री। पुरूरवा की माता।
उर्वशी - अप्सरा। इन्द्र के दरबार की नर्तकी। बाद में पुरूरवा की पत्नी।
उत्पलाक्षी - इला द्वारा पालित अनार्य कन्या।
आयु - पुरूरवा - उर्वशी का पुत्र।
सूर्यबाहु - पुरूरवा का अंगरक्षक। फिर सेनापति।
कृष्णनाग - पुरूरवा का अंगरक्षक। फिर समगृहित्रि।



इन्द्र - देवताओं का सम्राट।
वज्र - इन्द्र का सेनापति।
विश्वावसु - गन्धर्व। इन्द्र का सखा। उर्वशी का द्वारपाल। प्रसाधन-कर्त्ता।
चित्रसेन - गन्धर्वों का राजा।
पृषध्र, नाभाग, नरिष्यन्त - मनु के पुत्र। उत्तराधिकारी।
नारद - देवर्षि। ब्रह्मा के घुमक्कड़ पुत्र। इन्द्र के अनन्य सहयोगी।
सनत्कुमार - बालबैरागी। ब्रह्मा के पुत्र। इन्द्र के राजदूत।
भरत मुनि - अमरावती की नाट्यशाला के संचालक-निर्देशक।
कश्यप, विभावक - पहले राज्याभिषेक और बाद में पुरुषमेध के पुरोहित।
होता, उद्गाता, अध्वर्यु - पुरुषमेध के हवनकर्त्ता। गायक। उच्चारक।
दो ऋषि - इन्द्र के प्रशस्ति-गायक। चाटुकार कवि।

चार काली आकृतियाँ। चार देव सैनिक। दो ग्रामवासी। गण-प्रतिनिधि। नवरत्न। भीड़। लोग। किसान। आदमी। सैनिक। प्रहरी। अन्तरिक्ष-स्वर।

अग्नि-मंथन



दृश्य-एक

पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठान का एक राजमार्ग। दो सैनिकों– सूर्यबाहु और कृष्णनाग– का प्रवेश।

सूर्यबाहु : आखिर हमारे युवराज को यह क्या झक् सवार हो गयी !

कृष्णनाग : पता नहीं, इतना हंगामा खड़ा करने की क्या आवश्यकता थी !

सूर्यबाहु : वैसे भई, बात तो है।

कृष्णनाग : बात क्या है ?

सूर्यबाहु : ये बात नहीं है ! अब देखो, महर्षि वसिष्ठ ने सारे तीर्थों का जल भी मंगवा लिया। गण-पुरोहितों को बुलावा भी गया। वे तो, खैर, आ भी गये। बेचारे पुरोहित जो ठहरे। लेकिन वह जो गड़बड़ हो गयी.... **(चुप हो जाता है)**

कृष्णनाग : **(इधर-उधर देखता है)** कोई तो नहीं है। बताओ न, क्या गड़बड़ हो गयी।

सूर्यबाहु : अरे यही....। महर्षि वसिष्ठ ने देवलोक, सारस्वत के सभी राजाओं और ऋषि-कुलों को अभिषेक का निमंत्रण जो भेज दिया ....**(रुककर)** हालाँकि माता इला पहले ही मना कर रही थीं।

कृष्णनाग : क्यों ? मना क्यों कर रही थीं ?

सूर्यबाहु : इतने वर्षों से साथ हो लेकिन तुम रह गये जट्ट मूर्ख ही... !

कृष्णनाग : अरे वह तो हम हैं ही। तुम्हीं कौन बड़े वेदों के ज्ञाता हो !

सूर्यबाहु : इसे समझने के लिए वेदों का ज्ञान नहीं... व्यवहार-बुद्धि चाहिए। समझे !

कृष्णनाग : **(उसकी बातों पर ध्यान न देते हुए)** बताओ न, क्या गड़बड़ हो गयी ?

सूर्यबाहु : अन्धे हो क्या तुम ! इतने वर्षों से पहरेदारी में हो....देख नहीं रहे हो ! कोई आया वसिष्ठ महाराज के निमंत्रण पर !

कृष्णनाग : तो ? इसमें युवराज को हंगामा खड़ा करने की क्या आवश्यकता थी ! अरे भई, तुम्हें उत्तराधिकार में तो सम्राट-पद मिल नहीं रहा है। तुम्हें तो पुरों और जनपदों की समिति ने चुना है। न आयें राजा लोग और देवराज इन्द्र और महान ऋषिकुल और वो....साँझ-सबेरे भेस बदलने वाले गन्धर्व। उनके न आने से अन्तर क्या पड़ता है !

सूर्यबाहु : पड़ता है !

कृष्णनाग : **(चिढ़कर)** प्रत्येक बात को रहस्यमय बनाये रहने में आनन्द आता है तुम्हें !

सूर्यबाहु : **(मुस्कुराते हुए)** रहस्य की बात नहीं। यह महर्षि वसिष्ठ की एक कूटनीतिक चाल थी। **(कृष्णनाग आश्चर्य से उसका मुँह ताकता है)**

इससे पता चल गया कि हमारे शत्रु कौन हैं। उन सारे लोगों ने माता इला को क्षमा नहीं किया। अभी तक वे भूले नहीं हैं – सारे राज-कुल .... देवराज इन्द्र, आचार संहिताएं रचने वाले ब्राह्मण और समय-समय पर उन सारी आचार-संहिताओं को भंग करने वाले गन्धर्व....। इससे पता चलता है कि आगे वे क्या करने वाले हैं ! यह संकेत है मित्र ! बहुत कठोर और हिंसक रक्तपात का प्रथम संकेत है यह !

कृष्णनाग : तो होने दो न ! एक बार अन्तिम रूप से निपट लिया जाय....हद् हो गयी है । सहने की भी कोई सीमा होती है। अट्ठारह वर्ष हो गये हमें भागते-छिपते– इस पर्वत-कन्दरा से उस पर्वत-कन्दरा, इस वन-प्रदेश से उस वन-प्रदेश ..... देखो न, मेरी तो आधी से जियादा मूंछें सफेद हो गयीं।

सूर्यबाहु : और मेरी तो सारी की सारी। **(मूंछें ऐंठता है)**

कृष्णनाग : और फिर भी चैन नहीं कहीं....

सूर्यबाहु : तुम चैन की सोचते हो ! मुझे तो लगता है, कहीं कल से ही पीठ पर तरकस न कसना पड़े।

कृष्णनाग : लेकिन सच बताओ, माता इला ने किया क्या है ?

सूर्यबाहु : संकल्प....और क्या। यही उनका सबसे बड़ा अपराध है।

कृष्णनाग : तो ? इससे क्या ?

सूर्यबाहु : इससे क्या ! इससे क्यों नहीं ! युग बदल गया है मित्र ! जैसा कि सारे द्रष्टा ब्राह्मण कहते हैं। और इस हिसाब से स्त्री का दृढ़ संकल्प अब अनुचित है। **(बातें करते हुए प्रस्थान)**

दो पुरोहितों— कश्यप और विभावक का हड़बड़ाये हुए दूसरी ओर से अचानक प्रवेश।

कश्यप : **(अपने साथी पुरोहित विभावक को घूरते हुए)** – कैसे लोगों से पाला पड़ गया।

विभावक : अब आगे की सोचो। यात्रा कैसे करेंगे ! कुछ दक्षिणा तो मिली नहीं।

कश्यप : कैसी दक्षिणा ! अभिषेक होता तब न !

विभावक : तो रुकने को कह तो रहे थे महर्षि वसिष्ठ। तुम्हीं तो तन्ना कर चले आये।

कश्यप : देखो जी, प्रतिष्ठान के भदेस शब्दों से अपनी जिह्वा गन्दी मत करो !

विभावक : चुप रहो। हर जगह ऐंठे रहते हो। महर्षि का भी ध्यान नहीं रखा।

कश्यप : महर्षि ! हुँह ! वो काला, वर्णसंकर .... और महर्षि ! हमीं नहीं माने। समझते थे, सारस्वत के लोग झूठमूठ कलंकित करते हैं। लेकिन यह तो सचमुच वही निकला.... निकृष्ट, पामर, चाण्डाल। बाप रे बाप ! एकदम काला भुजंग !

विभावक : **(मुस्कुराता है)** गालियाँ बहुत सीख गये हो गांगेय प्रदेश में आकर !

कश्यप : और क्या ! यहाँ संहिताओं का पाठ करें !

विभावक : **(हँसता है)** आरम्भ तो किया था मंत्र-पाठ ! कैसी पड़ी !

कश्यप : बेकार धर्म-भ्रष्ट हुए आकर !

विभावक : वही तो मैं भी कह रहा हूँ। जब आ ही गये हो तो अच्छी तरह धर्म-भ्रष्ट हो जाते। दोपहर हो गयी है। सन्ध्या तक युवराज मान ही जाते।

कश्यप : युवराज और वह ! भूखा भेड़िया है कि मनुष्य की सन्तान। मुझे तो लग रहा था—उसी अभिषेक की वेदी पर हमारी बलि चढ़ेगी आज। मेरी तो घिग्घी ही बँध गयी। मैने 'स्वस्ति साम्राज्यं, भौज्यम्, स्वाराज्यम्, वैराज्यम्, पारमेष्ठ्यम्' का ज्योंहि मंत्रोच्चार किया उसने ऐसे ऊँचे स्वर में घुड़का....

विभावक : तुमने भी तो हद् कर दी। राज्याभिषेक के बाद राजपद की घोषणा का मंत्र पहले ही पढ़ने लगे। वसिष्ठ का तो कम से कम ध्यान रखते !

कश्यप : उस गवैये का ! उसे क्या देव-भाषा आती होगी ! आती होती तो हमें सारस्वत से बुलाया जाता ! अरे, मैंने सोचा, चलो जल्दी छुट्टी करें। दान-दक्षिणा लें और चलते बनें। देखते नहीं हो ! यहाँ लोगों से देव-भाषा में बोलो तो टुकुर-टुकुर मुँह ताकने लगते हैं। (**थोड़ा रुककर**) .... यहाँ तो सभी कुछ वर्णसंकर है मित्र ! भाषा हो तो, युवराज हों तो और ब्राह्मण हों तो। सब घालमेल है यहाँ। इनका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन ऐसे ही युवराजों का राज्याभिषेक होता रहा और ऐसे ही काले-कलूटे मंत्र-द्रष्टा ब्राह्मण पैदा होते रहे तो समझो—एक दिन वेदों की भी मिट्टी पलीद हो जायेगी।

विभावक : इसीलिए तो मैंने यहाँ की भाषा जल्दी सीख ली। नहीं तो खाना बनाने के लिए लकड़ी भी नहीं मिलती तुम्हें।

कश्यप : मुझे तो लगता है, मातृभूमि लौटकर भी कहीं यही ऊटपटाँग भाषा न बोलने लगूँ। मेरे बच्चे क्या कहेंगे ! और मेरी स्त्री तो रोने लगेगी !

विभावक : सोचेगी, यह मेरे ब्राह्मण को क्या हो गया ! गया था अच्छा-भला धन-संग्रह करने और लौटा हकलाता हुआ ! (**हँसता है**)

कश्यप : मैंने तो सोच लिया है ! और तुम्हें भी वही करना चाहिए।

विभावक : क्या ?

कश्यप : मातृभूमि पहुँचकर मैं कुछ दिन मौन रहूँगा और पाश्चाताप करूँगा। (**दोनों सैनिकों का पुनः प्रवेश। सूर्यबाहु अन्तिम बात सुन लेता है—उत्सुकता वश**)

सूर्यबाहु : किस बात का बाँभन-देवता !

कश्यप : (**घूमकर**) यहाँ आने का।

कृष्णनाग : यहाँ आने का ? क्यों ?

विभावक : (**व्यंगपूर्वक**) क्योंकि यह प्रदेश कितना रमणीक है ! यहाँ के लोग कितने सुदर्शन हैं !

दोनों पुरोहित एक दूसरे को देखकर हँसते हैं। दोनों सैनिक भी हँसने लगते हैं। उन्हें हँसते देख दोनों पुरोहित और भी जोर से हँसने लगते हैं। फिर दोनों सैनिक उनसे भी अधिक जोर से

ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। उन्हें इस तरह हँसते देख दोनों पुरोहित एकाएक चुप हो जाते हैं।

कश्यप : **(कुछ सन्देह की दृष्टि से)** आप लोग हँसे क्यों ?

सूर्यबाहु : आपको प्रसन्न देखकर देवता !

कश्यप : ओह, तब तो ठीक है।

सूर्यबाहु : आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ?

कश्यप : आपकी भाषा में 'झख् मार' कर।

कृष्णनाग : क्या मतलब ?

विभावक : राजमहल से आ रहे हैं। गये थे युवराज पुरूरवा का अभिषेक कराने।

सूर्यबाहु : अच्छा ! तो अभिषेक सम्पन्न हो गया ? प्रातःकाल से ही बड़ा कोलाहल था अन्दर ! युवराज मान गये ?

कश्यप : मान क्या गये ! कोई वंशानुगत संस्कार हो तब न ! सामान्य शिष्टाचार भी नहीं।

सूर्यबाहु : क्या बकते हैं आप लोग !

विभावक : कुछ नहीं, कुछ नहीं। **(कश्यप के सामने आकर खड़ा हो जाता है)** वैसे आप महानुभाव लोग हैं कौन ?

कृष्णनाग : हम लोग महल के पहरेदार हैं। इस समय पहरे पर नहीं हैं तो नगर्-भ्रमण को निकले थे।

कश्यप : **(सकपकाया हुआ)** अरे कुछ नहीं जी ! अब देखिये मान्यवर ! हम लोगों को सारस्वत से युवराज पुरूरवा के अभिषेक के लिए बुलाया गया। महर्षि वसिष्ठ का बुलावा था। हमें भी युवराज को देखने की बड़ी लालसा थी सोचा, चलो इतना बड़ा कार्य हमारे हाथों से सम्पन्न होगा। महर्षि अभी से युवराज को 'राजर्षि' कहते हैं। तो हमने सोचा, कितनी बड़ी ऐतिहासिक घटना के साक्षी होंगे हम ! लेकिन हम करते भी क्या !

सूर्यबाहु : **(नरम पड़ जाता है)** क्यों, आखिर हुआ क्या ?

विभावक : अब देखिये श्रीमान् ! हम तो यज्ञकर्ता ब्राह्मण हैं। पुरोहिती हमारा धन्धा है। रटे-रटाये मंत्र उगल देते हैं। हमें मंत्रों की रचना थोड़े ही आती है। दूसरों के रचे हुए मंत्रों से सारस्वत के सारे ब्राह्मणों की वृत्ति चलती है।

कृष्णनाग : हमने भी कुछ ऐसा ही सुना था।

सूर्यबाहु : तो अभिषेक में क्या विघ्न पड़ गया ?

कश्यप : विघ्न ! **(हंसता है)** आपके राजर्षि व्याघ्र-चर्म के आसन पर बैठे ही थे कि मैंने सोने की कलँगी से अलंकृत मुकुट उनके सिर पर रखने के लिए उठाया। पहले तो उन्होंने हाथों के संकेत से मना किया। **(विभावक कुछ याद करके हंसता है। कश्यप—चिढ़कर)** क्यों हंसते हो जी ! **(विभावक और जोर से हंसता है)**

सूर्यबाहु : फिर ?

कश्यप : फिर क्या ? मैं मुकुट उनके मस्तक पर बस रखने ही जा रहा था कि युवराज इस तरह कड़क कर बोले कि मुकुट मेरे हाथों से सहसा ही छूट

गया। बोले, हटाइए, यह सोने की कलँगी से अलंकृत मुकुट, यह सुवर्ण कवच, यह स्वर्ण माल और यह स्वर्ण सिंहासन....मुझे इसमें निष्पाप लोगों के रक्त के छींटे दिखाई देते हैं। (**विभावक हंसता है**)

कृष्णनाग : वाह !

विभावक : (**व्यंग और चिढ़ से**) वाह ! इसमें इस तरह गद्‌गद् होने की क्या बात है । (**हाथ फेंकते हुए, मुंह बनाते हुए**) वाह ! (**रुककर**) बात तो सच ही है । सम्पत्ति जहां भी है वहां रक्त के छींटे तो होंगे ही । (**दोनों सैनिकों की और मुखातिब होते हुए**) लेकिन आप ही लोग बताइए ! फिर कोई सम्राट-पद के लिए मारामारी क्यों करेगा ! (**व्यंग से**) अरे भाई, राजर्षि पुरूरवा से कोई पूछे कि राजा बनने के बाद आप क्या करेंगे ! क्या वन में चले जायेंगे ! क्या युद्ध नहीं करेंगे ! राज्य–विस्तार नहीं करेंगे....रक्त की नदियां नहीं बहायेंगे....लूटपाट नहीं करेंगे ! हर राजा करता है। नहीं करता तो फिर राजा काहे को है !

कृष्णनाग : देखिये बांभन देवता ! आपके सारस्वत में होता होगा यह सब राजाओं का रंग-ढंग। सीधे-सीधे बताइए कि अभिषेक हो गया कि नहीं ?

कश्यप : होता कैसे ! हमने ज्योंहि अभिषेक का मंत्र उच्चरित किया, राजर्षि मुझे घूरने लगे। मैंने सोचा, कोई उच्चारण-दोष तो नहीं हो गया। जब मेरे मुख से निकला– "याभिरिन्द्रमभ्यसिंचत् प्रजापतिः तो 'इन्द्र' का नाम आते ही एकाएक राजर्षि उठकर खड़े हो गये– बोले, 'बन्द करिये यह बकवास' और वेदी से उठकर चल दिये। महर्षि वसिष्ठ तो अवाक्....उन्हें जाते हुए देखते रहे। अचानक युवराज पलटे और महर्षि के पास आकर बोले, 'जिन मंत्रों से इन्द्र का राज्याभिषेक हुआ उनसे मेरा अभिषेक नहीं होगा।' और वे राज-प्रासाद में भीतर की ओर चले गये।

सूर्यबाहु : (**दुख से**) अर्थात् सब कुछ भंग हो गया।

विभावक : अरे, हुआ होगा आपका भंग....यहां तो यात्रा-व्यय भी नहीं है हमारे पास। है आप लोगों के पास कुछ द्रव्य ? बताइए, कैसे हम लोग सारस्वत पहुंचेंगे। आये तो आप ही लोगों के काम से थे।

सैनिक कुछ निकालकर दोनों पुरोहितों के हाथों पर रखते हैं। फिर तेजी से राज-प्रासाद की ओर जाते हैं।

सूर्यबाहु, कृष्णनाग : चलो जी, कहीं सब कुछ व्यर्थ न हो जाय। **प्रस्थान**

कश्यप : (**हथेली पर रखे हुए द्रव्य को उलट-पुलट कर देखता है**) अब ? अब क्या करें ?

विभावक : अब ? हम बताते हैं। अब हम अपनी दक्षिणा सारस्वत और इन्द्रपुरी में चलकर वसूलेंगे। वसूलेंगे नहीं, पूरी तरह दुहेंगे ! समझे !

कश्यप : (**चिढ़कर**) चौबीसों घंटे मसखरी अच्छी नहीं लगती !

विभावक : (**उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए**) चलो तो। नगर से बाहर कहीं निरापद स्थान में। चलो तो पहले।

दोनों निरापद स्थान देखते हुए चलते हैं ।

कश्यप : **(बैठते हुए)** हां, अब बोलो ।

विभावक : **(खड़ा रहता है)** पहले अपनी पत्री निकालो । और मसि और लेखनी ।

कश्यप निकालते हुए आंखों से जिज्ञासा प्रकट करता है ।

विभावक : लिखो ! **(कश्यप उसका मुंह ताकता है)** लिखो न ! 'पुरूरवा का कोई भी राज्याभिषेक नहीं हुआ । **(कश्यप अपने साथी पुरोहित को चकित होकर देखता है । फिर लिखने लगता है)** क्योंकि पुरूरवा वर्णसंकर है । **(लिखते हुए घूरता है)** क्योंकि उसे आर्यों ने नहीं, अमानुषों ने चुना है ।....हम अभिषेक की वेदी से उठ आये'....लिखो । 'हमने अभिषेक-मंत्र पढ़ने से मना कर दिया । हमने कहा कि हमारे प्राण भी चले जायँ लेकिन हम यह अधर्म नहीं करेंगे । हम सारस्वत के पवित्र वेदपाठी ब्राह्मण हैं ।' **(कश्यप लिखते हुए बोलकर दुहराता है । मुस्कुराता है और बोलता है– 'वाह')** लिखो....रुक क्यों गये ? कि 'पुरूरवा को वेद-मंत्रों से दुर्गन्ध आती है'....

कश्यप : 'दुर्गन्ध' नहीं कहा था ।

विभावक : चुपचाप लिखो तुम....तुम्हें अतिशयोक्ति और झूठ का महत्व नहीं मालूम । .... हां तो यह कि 'पुरूरवा स्वयं मंत्रों की रचना करना चाहता है....कि वह ब्राह्मणों को धर्म-भ्रष्ट, आर्यों और देवताओं को लुटेरा और स्वयं देवराज इन्द्र को अपने पिता का हत्यारा'....

कश्यप : **(बीच में टोकते हुए)** इतनी अति न करो ।

विभावक : क्यों न करूं ! तुम तो रहते हो रहते हो, नैतिकता के कुचक्र में फंस जाते हो । तुम देखते नहीं....त्रिगर्त और सारस्वत के सारे ब्राह्मण, या मनु महाराज के वंशज विलासी राजा लोग, या देवता, गन्धर्व, किन्नर और विद्याधर....क्या सभी लुटेरे और अधर्मी और पामर और लम्पट नहीं हैं ? क्या तुम नहीं जानते कि देवराज इन्द्र ने सभी के सामने मदान्ध क्रोध में अपने पिता द्यौस की निर्मम हत्या की थी । और स्वयं उस नचनिये नारद ने और ऋषिकुलों ने डर और चापलूसी में इस हत्या को उचित ठहराया था....क्या यह सब सच नहीं है ?

कश्यप : होगा सच....लेकिन पुरूरवा ने तो यह सब नहीं कहा ।

विभावक : **(विद्रूप भाव से हंसता है)** तो क्या हुआ ! हम इसे पुरूरवा के मुंह में डाल देंगे ।

कश्यप : **(चकित होकर)** और अपना दुख और चिन्ता भरा थोबड़ा लटका कर इसे मनु-पुत्रों और देवराज इन्द्र के सामने प्रस्तुत कर देंगे....

दोनों ठहाका मारकर हंसते हैं । प्रस्थान ।



दृश्य-दो

प्रतिष्ठान में पुरूरवा का राजमहल । दिन का तीसरा पहर ।

वसिष्ठ : **(साधारण, ऋषियों जैसी वेषभूषा जिसमें कहीं भी पाखण्ड की झलक नहीं । लम्बे घुंघराले केश । छोटी और हल्की दाढ़ी । श्याम वर्ण । चेहरा तना हुआ । गहरी चिन्तनशील आंखों में एक दृढ़ निश्चय का भाव । एक शान्त उदासी में स्थिर)**—समझ में कुछ नहीं आता ! क्या किया जाय....

इला : **(घुटनों पर ठुड्डी टिकाये शून्य में घूर रही है । अर्ध-धवल केशराशि । चिकना, चमकता हुआ, संवलाया हुआ चेहरा—जिसमें दो बड़ी-बड़ी आंखें । दीप्त ताम्बई ललाट)** स्थितियां और घटनाएं तो बहुत साफ हैं । और क्या करना है—यह भी अंधेरे में नहीं है ।

वसिष्ठ : तो आप भी चाहती हैं कि पुराने मंत्रों को हमें सदा के लिए छोड़ देना चाहिए ?

इला : **(मुस्कुराती हुई)** इस तरह आप कब तक मोह-ग्रस्त रहेंगे महर्षि ! बहुत हो चुका ! ऋषि-कुलों, ब्राह्मणों, क्षत्रिय सम्राटों और देवराज इन्द्र—कब तक....आखिर कब तक इनके हृदय-परिवर्तन की आशा में आप अंटके रहेंगे ! जो भागता है उसके लिए किसी का भी हृदय-परिवर्तन नहीं होता ! कब तक इस प्रतीक्षा में आप अपना निर्णय टालते रहेंगे कि शायद मुझे और उसे **(अन्दर राजमहल की ओर उंगली से संकेत करती हुई)** और शायद आपको....स्वीकार कर लिया जायेगा ।

वसिष्ठ : मुझे किसी की भी स्वीकृति की चिन्ता नहीं है ।

इला : लेकिन मुझे तो है । अपने लिए भी....युवराज के लिए भी । लेकिन उसके भी पहले आपके लिए....। और यह मेरा अधिकार है । और उसे मैं लेकर रहूंगी ।

वसिष्ठ : इन बातों के लिए समय नहीं है ।

इला : **(तमककर लेकिन दुःख-भाव से)** क्यों ? क्यों समय नहीं है ? क्या आप ऐसा कोई क्षण नहीं आने देना चाहते जब मैं अपनी कृतज्ञता का अर्घ्य आपको अर्पित कर सकूं ! कि आप इतने दिनों से किस तरह हमें छिपाते फिर रहे हैं । कभी मैं अपने बच्चे को मां हूं तो कभी पिता....कभी लोरियां तो कभी तीर-कमान....आखिर यह और कब तक चलेगा ! कब तक आप आर्य-गणों, ऋषि-कुलों और देवताओं के कृपाकांक्षी बने रहेंगे !

वसिष्ठ : **(आहत होकर इला को देखते हैं)** कृपा का प्रश्न नहीं है देवि ! जैसे छोटे बच्चे को हम धूप और ठण्ड से बचाते हैं न ! उसी तरह इस नवजात राज्य को भी....मैं चाहता था अभी द्वन्द्व न होता तो....

इला : **(स्नेह से निहारती हुई)** अर्थात् आप जानते थे कि युवराज के अभिषेक में कोई सम्मिलित नहीं होगा ?

वसिष्ठ : सम्मिलित होने का प्रश्न ही कहां उठता था ! हमने नये प्रश्न उठाये। राजा का चुनाव कराया। जन-समितियों और जन-सभाओं के निर्माण की घोषणा की....जनता को मूर्त किया !

इला : और उसके बाद भी सोचा कि सारस्वत के पुरोहितों से मंत्र-पाठ करा देने से सब-कुछ पर पर्दा पड़ जायेगा। **(वसिष्ठ शून्य में देखते हैं)**....तो द्वन्द्व तो उपस्थित है महर्षि ! अब बताइए, आप मुझे कैसे छिपाते रहेंगे ! और फिर....**(भीतर पुरूरवा की ओर संकेत करती है)** उस आग के पर्वत को कैसे छिपायेंगे जिसे आपने अपनी सांवली हथेलियों से संवारकर रचा है !

बाहर कोलाहल। सम्राट पुरूरवा और महर्षि वसिष्ठ की जय-जयकार....

वसिष्ठ : **(बाहर की ओर देखते हुए)** बाहर अपार जन-समूह उमड़ रहा है.... और युवराज हैं कि अड़े हुए हैं।

इला : **(वसिष्ठ के पास जाकर—स्नेह और दुख से)** मेरे प्रिय इकलौते भाई ! मेरे संरक्षक ! मेरे आचार्य ! मेरे गुरु ! मेरे निर्माता ! मैं बहुत थक गयी हूं।

वसिष्ठ : **(सिर पर हाथ रखते हुए)** हमारे पास थकने का समय नहीं है।

इला : **(उसी तरह)** मैं अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मैं चाहती हूं कि वे सभी जानें कि मैं कहां हूं और क्या कर रही हूं ! वे सभी, जिन्होंने मेरे अस्तित्व को नकार दिया....जिन्होंने मेरे स्त्री होने का अपमान किया....जिन्होंने मेरे मातृत्व को तिरस्कृत किया....उसकी हंसी उड़ायी....

वसिष्ठ : समस्याएं इतनी व्यक्तिगत नहीं हैं....जैसा कि आप समझती हैं।

इला : क्यों नहीं हैं महर्षि ? हैं। चाहे उनका सामाजिक आधार कितना भी बड़ा क्यों न हो। **(रुककर)**....मैं तो चाहती हूं, मेरे वक्ष में दहकते अग्नि-खण्ड उन पर आग की आंधियाँ बनकर टूट पड़ें।....अट्ठारह वर्ष हो गये—मुझे धुआं होते ! क्या मैं बुझ जाऊंगी तभी कुछ होगा !

बाहर बार-बार कोलाहल। जयजयकार की ध्वनि।

वसिष्ठ : ठीक है....ठीक है। **(इला को थपथपाते हैं)**

इला : क्या सारस्वत के बिना पुरूरवा का अभिषेक प्रमाणित नहीं होगा ?....जन-समितियों का प्रमाण तो है। **(वसिष्ठ का मुंह ताकती है)**

वसिष्ठ : फिर भी सारस्वत हमारी परम्परा है....हमारे लिए प्रमाण है।

इला : **(आहत-सी)** आप प्रमाणों की खोज में क्यों भटक रहे हैं आचार्य ! जबकि आप स्वयं प्रमाण हैं। **(रुककर)**—सच बताइए, आप अपनी मौन निष्ठा और अपने किये की स्वीकृति भी नहीं लेना चाहते ? क्या मंत्र-द्रष्टा होने के लिए अपने ही प्रति इतना हृदयहीन होना अनिवार्य है !

वसिष्ठ : **(जैसे अपने आप में लौटते हुए)**....आप इसका परिणाम नहीं जानतीं।

बाहर पुनः कोलाहल और जयजयकार।

इला : परिणाम मैं जानती हूं महर्षि ! और चाहे आप कुछ भी करें....चाहे सारस्वत से पुरोहितों को बुलायें, या पुष्कलवती से, या स्वयं इन्द्रलोक से....। आप

ही तो कहते हैं, समस्याएं इतनी व्यक्तिगत नहीं हैं। उनका एक सामाजिक आधार है। कोई भी पुरोहित मंत्र पढ़कर चला जायेगा तो क्या आप समझते हैं वे पुरूरवा को सम्राट स्वीकृत कर लेंगे। कर तो लेंगे लेकिन कहेंगे, आर्य-परम्परा से चले आने वाले जो विधि-विहित विधान हैं उन्हें स्वीकार करो। लूट और हत्या में हमारे साझीदार बनो। ....क्या आप स्वीकार कर लेंगे ? नहीं करेंगे न ! और इसमें अपराधी आप ही हैं महर्षि ! क्योंकि लगातार वर्षों से आप एक दूसरी व्यवस्था के बारे में अपने विचार गण-सभाओं, पुरों और जनपदों में व्यक्त करते रहे हैं। किसी भी दबाव में आपने अपने को बदला नहीं। इसीलिए आपका हठ—अनादर, तिरस्कार और देश-निकाले के योग्य समझा गया। आपको भागना पड़ा। और आप अपने विचारों के लिए, अपने मंत्रों के लिए एक नये लोक की खोज में भटकते रहे। और अब....जब आपको वह लोक—वह जनाधार प्राप्त हो गया है, अब जब कि बाहर आपका जयजयकार हो रहा है, आप उस जयजयकार पर सारस्वत और इन्द्रपुरी का तिलक लगाने को व्याकुल हो रहे हैं !

बाहर लगातार कोलाहल और जयजयकार।

वसिष्ठ : सोचता हूं, मैं ही मंत्र पढ़कर अभिषेक सम्पन्न करा दूं।

अनमने भाव से भीतर की ओर प्रस्थान।

इला : **(स्नेह और दुःख से हंसते हुए)** वही सनातन हठ.... । एक ओर परम्परा के नकार का हठ.... दूसरी ओर उसे सुरक्षित रखने का हठ.... **(इधर-उधर देखती है। फिर आवाज लगाती है)** उत्पलाक्षी.... उत्पला ! कहां हो तुम ? **(उत्पलाक्षी भागती हुई आती है)** युवराज कहां हैं ?

उत्पलाक्षी : प्रांगण में टहल रहे हैं माता !

इला : उनके साथ कोई और है ?

उत्पलाक्षी : सूर्यबाहु और कृष्णनाग ! दोनों उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। **(थोड़ा रुककर)** अब क्या होगा माता ?

इला : **(लम्बी सांस लेकर)** अब ? अब क्या होगा, वह तो मैं भी नहीं जानती।

उत्पलाक्षी : युवराज बहुत क्रोध में हैं माता !

इला : अच्छा ऽऽ !

उत्पलाक्षी : माता ! एक बात पूछूं ? **(इला उसकी ओर घूमकर देखती है ! आंखों में उत्सुकता और सहमति का भाव)** युवराज आप से रुष्ट क्यों रहते हैं ?

इला : **(चौंकती है)** कैसे ?

उत्पलाक्षी : जब भी आपको देखते हैं उनके नथुने क्रोध से फड़कने लगते हैं।

इला : ओह ! युवराज !

उत्पलाक्षी : मैं अब बड़ी हो गयी हूं माता ! मुझसे आपका दुख....। **(रुआंसी हो जाती है)**

इला : **(प्यार से थपथपाती हुई)**—तू जो कहती है उत्पला, कि युवराज जब भी मुझे देखते हैं उनके नथुने क्रोध से फड़कने लगते हैं.... । युवराज मुझे देखते कहां हैं । वे तो अपनी मां का अविश्वसनीय दुख देखते हैं । वे तो अपनी मां की लांछना देखते हैं । भोजन के बिना वे मेरे स्तनों का सूखता हुआ दूध देखते हैं....

उत्पलाक्षी : **(इला के कन्धे पकड़ लेती है)** बस माता....बस ।

इला : **(वैसे ही अपने हाथों से उसके हाथों को स्पर्श किये हुए)** उत्पला ! मैं उनके लिए एक कठिन, रोमांचक स्मृति की तरह हूं—जीवित और साक्षात् । मैं अंधेरी रातों में, किसी पहाड़ी गुफा में, उनके सिरहाने की सिसकी हूं, जो दिखाई तो नहीं देती लेकिन अनवरत, अविराम सुनाई पड़ती है । जिसे अंधेरे में युवराज के नन्हें हाथ टटोलते हैं । लेकिन सिसकी की जगह उनकी उंगलियां अचानक स्पर्श करती हैं—भिंचे हुए होंठ, भीगे हुए नेत्र और उठता-बैठता कण्ठ । वे घबराकर अपनी उंगलियां हटा लेते हैं । मैं उन्हें उजाले में ही नहीं, अंधेरे में ही नहीं....हर आते-जाते पल उनके अस्तित्व से लगी रहती हूं । यही तो मेरा सबसे बड़ा दुःख है । **(पलटकर । आंखें पोंछती हुई मुस्कुराती है)** और यही तो मुझे अच्छा लगता है—एक अशान्त, खौलता हुआ अग्नि का समुद्र । एक विराट अग्नि-मंथन जो लगातार उनके भीतर चल रहा है । मैं उनकी आंखों से ओझल नहीं होऊंगी । जिससे वे उसी तरह खौलते रहें....जिससे वे शीतल, कोमल और सहज और स्नेहिल न हो जायं.... ।

क्षण भर को सन्नाटा और धुंदला आलोक-वृत्त इला पर । फिर तीव्र प्रकाश । विंग से तेज कदमों से पुरूरवा प्रवेश करता है । वह विकट उत्तेजना में मालूम पड़ता है । दूसरी ओर से वसिष्ठ शान्त-चित्त प्रवेश करते हैं । पुरूरवा पहले इला को देखता है फिर वसिष्ठ को । पीछे-पीछे सूर्यबाहु, कृष्णनाग प्रवेश करते हैं और वसिष्ठ को दूर से ही सिर नवा कर मंच के एक कोने में खड़े हो जाते हैं ।

पुरूरवा : **(वसिष्ठ की ओर उन्मुख होते हुए)**—तो मैं बाहर गण-प्रतिनिधियों से कह देता हूं कि मेरी कोई उपाधि नहीं है ; मेरे माथे पर कोई मुकुट नहीं है । धनुष-बाण उठाओ और मेरे साथ चलो....

इला : **(शिकायती स्वर में)** महर्षि !

पुरूरवा : मैं कितनी बार एक ही बात दुहराऊं । मैं हत्यारों, लुटेरों और पाखण्डियों से शब्द नहीं लेना चाहता । आप मुझे पवित्र मंत्र दीजिए....

वसिष्ठ : **(दृढ़तापूर्वक)** आर्य-परम्परा में सभी कुछ पाखण्ड नहीं है ।

पुरूरवा : आप ही तो कहते थे गुरुदेव ! जिन मंत्रों का उपयोग पाखण्ड के लिए होता हो उनसे घृणा स्वाभाविक है ।

वसिष्ठ : किन्तु इस तरह की विकट उत्तेजना का क्या अर्थ है। इस तरह मंत्रों को विकृत करके देखने से सारस्वत में फैलाया गया यह प्रवाद सच हो जायेगा कि हम धर्म विरोधी हैं और जन-शक्ति भड़क जायेगी।

पुरूरवा : प्रश्न यह है कि कौन-सी जन-शक्ति ! क्या वह, जो बाहर आपका जयजयकार कर रही है ! या पुष्कलवती और अमरावती की जन-शक्ति ! सम्राट नरिष्यन्त, नाभाग और पृषध्र की जन-शक्ति....गन्धर्वराज चित्रसेन की जन-शक्ति....

वसिष्ठ : **(मुस्कुराते हैं)** समझता हूं राजर्षि ! मुझे इस जन-शक्ति की चिन्ता नहीं है जो बाहर ठाठें मार रही है। सारस्वत और अमरावती और गन्धर्वदेश....कुभा और दृशद्वती से लेकर लोहित तक की सारी जनशक्ति को मुझे अनिर्णय में डाले रहना है। इसीलिए मैं चाहता हूं कि हमें कोई धर्म-विरुद्ध न कहे।

पुरूरवा : **(आहत भाव से)** और इसके लिए लगातार आर्य-परम्परा की दुहाई देते रहना आवश्यक है ! **(वसिष्ठ मुस्कुराते हैं)** आपको यह क्या हो गया है गुरुदेव ! आप यह दुहरा खेल कबसे खेलने लगे। इतने वर्षों तक पर्वत-कन्दराओं और घने वनों में छिपते-भटकते, लगता है, आप थक गये हैं। क्यों....आप में इतना बड़ा परिवर्तन क्यों आ गया गुरुदेव !

वसिष्ठ : क्योंकि घटनाएं अब निर्णायक दौर में हैं। क्योंकि हम भाग नहीं रहे हैं। क्योंकि हम चुनौती दे रहे हैं....

पुरूरवा : क्षमा करें गुरुदेव, मैं शब्दों के दुहरे खेल के पीछे छिपकर नहीं रह सकता । मैं फिर कहता हूं– मुझे उन मंत्रों पर हत्यारों के रक्त-रंगे हाथों की छाप दिखाई पड़ती है। उनमें झूठी प्रशंसाएं हैं। विदूषकों और चाटुकारों की विकृत चापलूसियां हैं....

वसिष्ठ : **(जैसे ऊबकर)** राजर्षि ! भाषा का यह कौन सा प्रयोग है !

इला : यही तो सच्चा प्रयोग है। जब आपने युवराज को इस तरह रचा है तो वे इसी भाषा का प्रयोग करेंगे।

वसिष्ठ : यह भाषा विषैले तीर की तरह चुभती है। इसमें सौम्यता और संवार नहीं है।

पुरूरवा : सौम्यता और संवार !.... इस वातावरण में। जब कि आकाश स्वच्छ नहीं है। जब कि चारों ओर युद्ध की गन्ध है ! जब कि चारों ओर शत्रु मंडरा रहे हैं....

वसिष्ठ : मैं उन सभी को शत्रु नहीं मानता।

पुरूरवा : **(व्यंगपूर्वक हंसता है)** गुरुदेव सचमुच थक गये हैं मां !

इला : क्यों ? क्यों उन्हें शत्रु नहीं मानते आप ?

पुरूरवा : **(एकाएक उत्तेजित होकर)** क्यों ? क्या यह भी शब्दों का दुहरा खेल है ? क्या जब आप तेज फरसे की धार से दो टुकड़े कर दिये जाते तभी वे आपके शत्रु होते....जब वे विश्वकर्मा द्वारा बनाई गयी किसी यज्ञ-वेदी पर आपको अग्नि में झोंक देते, आपको आदि-पुरुष की उपाधि से

अलंकृत कर देते....तभी वे आपके शत्रु होते ? वे संस्कृति, ज्ञान और परम्परा का उपयोग जनपदों को लूटने के लिए करते हैं । इसीलिए वे जनता के शत्रु हैं । उनका धर्म-पालन है– गोधन, स्वर्ण, घृत और गोधूम को बलपूर्वक प्राप्त करना । उन्होंने यज्ञों के विधान को विकृत किया है। वे छूंछे मंत्र बोलते हैं और उनकी दृष्टि हिरण्य पर होती है, स्वर्ण-मंडित सींगवाली गौवों पर होती है । और आप हैं....आप हैं कि इस प्रासाद के भीतर भी उन्हें शत्रु मानने से इन्कार करते हैं। आपको भी तो ऋषि-कुलों से इसीलिए बहिष्कृत होना पड़ा कि आप जन-जातियों और आर्य-गणों की एक मिली-जुली संस्कृति का बखान कर रहे थे....कि आप दासों को दस्यु कहने का विरोध कर रहे थे....कि आप उनके लिए नये जंगलों की सफाई और कृषि का नया अभियान चला रहे थे । तब....तब आपने दुहरे शब्दों का यह खेल क्यों नहीं खेला ? **(उत्तेजना और क्रोध में हांफता है)** सूर्यबाहु ! **(चीखकर बुलाता है । इला और वसिष्ठ एक दूसरे को देखने लगते हैं)** कृष्णनाग !

सूर्यबाहु, कृष्णनाग : **(सामने आते हैं)**– युवराज !

पुरूरवा : गण-प्रतिनिधियों को भीतर बुलाओ !

दोनों बाहर जाते हैं । पुरूरवा मंच पर बेचैन हवा की तरह टहलने लगता है । मंच पर सन्नाटा । इला पुरूरवा के पीछे जाकर खड़ी हो जाती है । फिर बहुत धीरे से अपना हाथ पुरूरवा के कन्धे पर रखती है । पुरूरवा कनखियों से मां को देखता है– कोई हरकत नहीं करता । मंच के बायें विंग से पांचों गण-प्रतिनिधि प्रवेश करते हैं । आगे बढ़ते हुए वे मंच के थोड़ा निचले भाग में पुरूरवा की ओर उन्मुख होकर दोनों हाथों की अंजुली बनाये समवेत स्वर में बोलते हैं, 'सम्राट पुरूरवा की जय, सम्राट पुरूरवा की जय ।' पुरूरवा थोड़ी उलझन में दिखाई देता है । अपने कन्धे पर से इला का हाथ वह धीरे से हटाता है और उसे अपने बराबर में खींच लेता है । फिर वह वसिष्ठ की ओर देखता है । वसिष्ठ आगे बढ़ते हैं और पुरूरवा के पास आकर खड़े हो जाते हैं ।

पुरूरवा : प्रतिनिधि-गण ! देखिये, मेरे माथे पर कोई मुकुट नहीं है....

वसिष्ठ : **(हाथ उठाकर बीच में रोकते हुए)** ठहरिये राजर्षि !

पुरूरवा : **(गण-प्रतिनिधियों से)** फिर भी मैं आपकी बातें सुनूंगा....और जब सुनूंगा तो अनसुनी नहीं करूंगा।

गण-प्रतिनिधि : हमारे पास अग्नियाँ नहीं हैं सम्राट !

पुरूरवा : **(मुड़कर क्रोध से वसिष्ठ की ओर देखता है)**– और ?

गण- प्रतिनिधि : वे हमारी रक्षा नहीं करते सम्राट ! वे हमारा घृत, गोधूम, गौवें, सन्तान और स्वर्ण सभी कुछ छीनकर यज्ञ करते हैं । रत्न-जटित महलों का निर्माण करते हैं....नगर बसाते हैं.... । सम्राट ! वे हमारे बनाये हुए रथों पर चढ़कर

बार-बार हमीं को रौंदते हैं– रात के अंधेरे में। **(वसिष्ठ अचानक मुड़ते हैं और भीतर चले जाते हैं)** वे हमारा सूर्य, हमारे वन, हमारी नदियां, हमारे समुद्र, हमारा आकाश भी हमसे छीन लेंगे सम्राट !

पुरूरवा : **(कुछ निश्चय करता हुआ-सा। फिर हाथ उठाता हुआ)** –सूर्यबाहु, कृष्णनाग ! **(दोनों आगे आते हैं)** मेरे निकट आओ। **(पुरूरवा की आंखों में स्नेह और कृतज्ञता है। दोनों आकर पुरूरवा के दायें-बायें खड़े हो जाते हैं। पुरूरवा उनके कन्धों पर दायां-बायां हाथ रखता है)** प्रतिनिधि-गण ! ये दोनों सैनिक मेरे संरक्षक हैं ! मेरे पिता-तुल्य हैं। **(दोनों उलटकर पुरूरवा को स्नेहसिक्त नेत्रों से देखते हैं। इला आंखें पोंछती है)** मैं आप सभी को साक्षी बनाकर, माता इला और गुरुदेव वसिष्ठ.... **(एकाएक पुरूरवा पीछे मुड़कर प्रश्नवाचक मुद्रा में इला को देखता है। तभी वसिष्ठ विंग से निकलकर आते हैं और एक लिपटा हुआ भोजपत्र पुरूरवा के हाथों में थमा देते हैं। पुरूरवा एक बार उस लिपटे हुए भोजपत्र को देखता है। फिर प्रश्नवाचक मुद्रा में वसिष्ठ की ओर)....** हां तो मैं आप सभी को साक्षी बनाकर, माता इला और गुरुदेव वसिष्ठ की आज्ञा से सूर्यबाहु को इन नये राज्य का सेनापति और कृष्णनाग को समगृहित्रि नियुक्त करता हूं।

गण-प्रतिनिधि : सेनापति सूर्यबाहु की जय ! समगृहित्रि कृष्णनाग की जय !

पुरूरवा वसिष्ठ द्वारा दिये गये भोजपत्र को खोलकर देखता है। एकाएक उसकी आंखों में एक गहरी चमक और मुख-मुद्रा में एक विचित्र प्रकार का उल्लास दमकने लगता है। वह घूमकर श्रद्धा-गद्गद् नेत्रों से वसिष्ठ को देखता है। वसिष्ठ पुरूरवा की ओर आशीर्वाद का हाथ उठाते हैं।

पुरूरवा : **(भोजपत्र को ऊपर उठाते हुए)** एक नया मंत्र है यह-गुरुदेव द्वारा रचा हुआ। राजा और जनता दोनों के लिए।

समवेत-स्वर : **पृथिवी के पवित्र अन्धकार से गर्भ के पवित्र अन्धकार तक**
उस छायामय, शीतल, पवित्र अन्धकार की सौगन्ध

अपनी शोणित-गर्जना में जो हमें ले गये तटों से दूर और दूर
लहूलूहान उन फेनिल समुद्रों के जन्म के सौगन्ध

नदियों के गहन अन्तस्थल में छिपे उस
हरे-हरे ग्राह-सौन्दर्य की सौगन्ध

श्वेत और सुनहले और नीलवर्ण मन्द्र संगीत में
जिसने हमारी क्रुद्ध कराह को कभी तो छिपाया
और कभी दुलराया....

हमारे हृदयों में उगते उस हिमवन्त, वैदूर्य, गन्धमादन उस हेमकूट... महामेरु की सौगन्ध

अपने दहकते प्रकाश से जिन्होंने सारे आकाशों को स्वच्छ किया
जिन्होंने हमारे लहराते केशों को स्वर्णिम आभा से रँग दिया
उन लोहित, बुभुक्षित और सान्द्र अग्नियों की सौगन्ध

असंख्य आकाशों से परे....जिन्हें हम रचेंगे, जिन्हें हम पायेंगे
अपने पथरीले पैरों की छाप से जिन्हें हम गुंजायेंगे
उन हृदयहीन पीत ब्रह्माण्डों की सौगन्ध

वनों से गूंजते आवाहन की सौगन्ध
मरीचिका में फंसे मृग के नेत्रों की सौगन्ध
भोर के तार-तार वस्त्रों में निर्वसना
उषा माता की सौगन्ध

सिंह के एकान्त रमण की सौगन्ध
मां के गर्भस्थ शिशु की सौगन्ध....

हम इस पृथिवी से वंचित हो जायं
हम उन नदियों से वंचित हो जायं
हम उन समुद्रों से वंचित हो जायं
हम उन पर्वतों से वंचित हो जायं
हम उन वनों से वंचित हो जायं
हम उन ब्रह्माण्डों से वंचित हो जायं
हम उन प्रकाशों से वंचित हो जायं
हम उन मृग-नैनों से वंचित हो जायं
सिंह की दहाड़ से वंचित हो जायं
सुख से, सन्तान से, स्वर्ग से
संभोग से वंचित हो जायं—

यदि हम तुम्हारी गौवों, गोधूम, घृत और हिरण्य का बलपूर्वक हरण करें
यदि हम भूख और अकाल का विकट-मुख तुम्हारे लिए खोल दें
यदि हम तुम्हारे हृदय और मस्तिष्क के विरुद्ध षडयन्त्र करें
यदि हम तुम्हारे अस्तित्व के
प्रथम और अन्तिम हत्यारें हों।

क्षण भर के लिए मंच पर सन्नाटा रहता है फिर पुरूरवा उद्घोष के स्वर में बोलता है।

पुरूरवा : **(कृष्णनाग से)** सम्गृहित्रि ! सभी ग्रामों, पुरों और जनपदों में निर्देश भिजवा दो—कोई भी मनु-पुत्रों को बलि और भाग नहीं देगा। ब्राह्मणों और पुरोहितों के कहने पर कोई भी यज्ञ के लिए घृत, गोधूम, गौवें और स्वर्ण नहीं देगा। क्योंकि हम इस लूट के धन्धे को आज से सदा के लिए बन्द करते हैं। ऋषि-कुलों से कहो कि वे महर्षि वसिष्ठ से तत्काल परामर्श करें.... **(सूर्यबाहु की ओर उन्मुख होकर)** सेनापति ! राज्य की सीमाओं पर तत्काल सेनायें भेज दो। जहां भी यज्ञ-धूम उठ रहा हो उसे तुरन्त बुझा दो। यज्ञ-वेदियों को नष्ट कर दो। और सारथी से कहो, हमारा रथ तुरन्त तैयार करे। हम अभी अग्नियां लाने के लिए इन्द्रपुरी प्रस्थान करेंगे । **(गण-प्रतिनिधियों के ओर मुड़कर)** प्रतिनिधि-गण ! जाकर ग्रामों, पुरों और जनपदों में यह शुभ-समाचार तुरन्त दीजिए कि आप अँधेरे में नहीं रहेंगे। **(दृढ़ निश्चय के साथ)** अग्नियां मैं अवश्य लाऊंगा....लाऊंगा ही।

प्रतिनिधि गण पुरूरवा की जय बोलते हुए मंच से बाहर जाने को उद्यत होते हैं। तभी विंग से प्रहरी तेजी से आता है। सभी उसे घूमकर देखने लगते हैं।

प्रहरी : सम्राट की जय हो। द्वार पर इन्द्र का दूत और देवर्षि नारद उपस्थित हैं।

पुरूरवा के चेहरे पर एकाएक दुस्सह क्रोध झलकता है। वह पहले वसिष्ठ को देखता है, फिर इला को। सूर्यबाहु और कृष्णनाग स्तब्ध हैं और बाहर जाते हुए गण-प्रतिनिधि एकाएक घूमकर अपनी मुट्ठियां उस द्वार की ओर तानते हैं जहां इन्द्र का दूत उपस्थित है। अन्धकार।



दृश्य-तीन

इन्द्र का दरबार। अकेले ही प्रवेश करता है। टहलते हुए रुककर थोड़ी देर खाली सिंहासन की ओर देखता रहता है। फिर दूसरे खाली आसनों को....फिर टहलने लगता है।

इन्द्र : **(द्वार की ओर घूमते हुए)** प्रहरी!

प्रहरी : **(प्रवेश करते हुए)** सम्राट की जय हो!

इन्द्र : सेनापति को बुलाओ। **(प्रहरी का प्रस्थान। इन्द्र टहलते हुए)** क्या करूं, मुझे चुनौतियां पसन्द नहीं हैं! चाहे वे किधर से भी आयें। मेरे लिए क्षमा से बड़ा कोई अपराध नहीं है। इसीलिए मैंने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। मेरी कल्पना में सिर्फ 'मैं' होता हूं। 'मैं' ही था और 'मैं' ही रहूंगा। यह ब्रह्माण्ड मेरे होने से है और मेरे होने से ही रहेगा। इसका औचित्य-अनौचित्य—सभी कुछ मैं हूं। **(पलटकर दर्शकों को घूरता हुआ)**....फिर भी कोई न कोई सिरफिरा खड़ा हो जाता है! आखिर क्यों !क्यों!

सेनापति वज्र का प्रवेश।

वज्र : देवराज की जय हो!

इन्द्र : **(टहलता हुआ)** देवर्षि नारद प्रतिष्ठान से लौट आये सेनापति!

वज्र : हां सम्राट! आपका स्वस्ति-वचन सम्राट पुरूरवा को मिल गया।

इन्द्र : और मेरा सन्देश?

वज्र : सन्देश भी। किन्तु....

इन्द्र : किन्तु क्या?

वज्र : सम्राट पुरूरवा उसके पहले ही अमरावती आने की घोषणा कर चुके थे।

इन्द्र : **(व्यंग से)** देखा सेनापति, पृथिवी पर मेरा कितना सम्मान है!

वज्र : **(हिचकिचाते हुए)** सम्राट पुरूरवा अपनी प्रजा के लिए अग्नियां चाहते हैं।

इन्द्र : **(ऊपर देखते हुए)** सम्राट होते ही व्यक्ति कितने ऊंचे विचारों से भभकने लगते हैं! **(घूमकर हंसता हुआ)** सुनो सेनापति! अग्नियों के चारों ओर सैनिकों का एक घेरा डाल दो! समझे!

वज्र : **(मुस्कुराता हुआ)** समझ रहा हूं देवेन्द्र!

इन्द्र : और देखो, सारस्वत से जो दो पुरोहित आये हैं उनका भी उचित सम्मान करो। उनके भी इर्द-गिर्द सैनिकों को तैनात कर दो। .... और महर्षि वसिष्ठ? अभी नहीं पहुंचे?

वज्र : वे तो कल ऋषियों की सभा में उपस्थित भी थे।

इन्द्र : **(आश्चर्य से)** अच्छा .... वे सम्राट पुरूरवा से भी पहले पहुंच गये!

वज्र : आपकी इच्छा का अनादर कौन कर सकता है वृत्रहन्ता!

इन्द्र : यही तो बात है वज्र! जो लोग मुझे जानते हैं वे ऐसा ही करेंगे। फिर तो मैं उन्हें सब कुछ देता हूं—बरसते हुए बादल, लहराते हुए धान्य, स्वर्ण,

अप्सराएं और चक्रवर्ती उपाधियां.... । लेकिन अब लोग थोड़ा अपने को भी जानने लगे हैं । आदर्शों को लेकर विक्षिप्त हो जाते हैं । बताओ वज्र ! उनके लिए मैं क्या कर सकता हूं ! क्या मुझसे भी बड़ा कोई आदर्श हो सकता है ?

वज्र : महर्षि वसिष्ठ ने आपके सामने उपस्थित होने की अनुमति चाही है ।

इन्द्र : मैं भी व्याकुल हूं वज्र ! मैं भी मिलना चाहता हूं । देखना चाहता हूं — एक नये साम्राज्य का प्रवर्तन करने वाला ऋषि कैसा दीखता है ! उसके रंग-रूप में कोई परिवर्तन आया है या वैसा ही है **(हंसता है)** ! लेकिन इसमें अनुमति की क्या आवश्यकता है ! क्या मेरा निमंत्रण पर्याप्त नहीं है ?

वज्र : मैंने भी यही बात कही । लेकिन महर्षि कहते हैं, मैं बहिष्कृत हूं । अतः मेरे लिए अनुमति अनिवार्य है ।

इन्द्र : **(थोड़ा आश्चर्य से)** —ऋषि-कुलों से तो मैंने कह दिया था उनका बहिष्कार वापस ले लें और उनकी ऋचाओं को ऋग्वेद के अगले मण्डल में स्थान दे दिया जाय । .... और तुम कह रहे हो कि वे कल ऋषियों की सभा में उपस्थित भी थे ।

वज्र : हां.... लेकिन इसके बारे में कुछ गड़बड़ सुनाई पड़ रही है !

इन्द्र : **(सिंहासन पर जाकर बैठ जाता है)** देखो सेनापति ! तुम जानते ही हो, यह 'गड़बड़' शब्द मुझे पसन्द नहीं है । **(जोर से)** प्रहरी ! **(प्रहरी का प्रवेश)** ऋषियों से कहो, मैं अभी उनके दर्शन करना चाहता हूं । **(प्रहरी का प्रस्थान)** वज्र ! तुम्हें नहीं लगता कि ढोंग भी चन्दन-चर्चित होता है ! **(वज्र समझ नहीं पाता । इन्द्र हंसता है)**—लगता है, तुम मंत्र-पाठ कभी नहीं सुनते । ठीक करते हो । तीर लक्ष्य पर साधने में बाधा पड़ती है ।— इसीलिए तो तुम वज्र हो....**(ठठाकर हंसता है । दो ऋषियों का प्रवेश)**

दोनों ऋषि : महान मघवा की सदा जय हो !

इन्द्र : **(घूरते हुए)** वह तो होगी ही । आप लोगों के रहते न होगी तो फिर कब होगी !

दोनों ऋषि : हमसे क्या अपराध हुआ वृत्रहन्ता !

इन्द्र : पहले यह समूह-गान आप लोग बन्द करिये । **(दोनों ऋषि सिटपिटाये हुए खड़े रहते हैं)** कल की सभा में क्या हुआ ? क्या सभा ने वसिष्ठ का बहिष्कार वापस लिया ?

ऋषि एक : हमने तो सर्वसम्मति से प्रस्ताव रखा था....किन्तु ....

इन्द्र : किन्तु क्या ? यह भी कोई ऋक् है जो आप लोग गाकर पढ़ेंगे । आप लोगों को हकलाने की आदत पड़ गयी है । पूरा वाक्य क्यों नहीं बोलते !

ऋषि दो : महर्षि वसिष्ठ ने मना कर दिया । उन्होंने कहा, मुझे बहिष्कृत ही रहने दीजिए।

इन्द्र : **(व्यंग से)** अच्छा SS....

ऋषि एक : उन्होंने कहा, मैं अपने प्राप्त संस्कारों और विश्वासों को छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं हूं। मैं ऋषियों की सभा में सर्वसम्मति के निर्णयों से असहमति का अधिकार चाहता हूं। क्योंकि सर्वमत और सर्वाधिकार मेरे चिन्तन की परिधि के बाहर है।

इन्द्र : कितने ऊंचे विचार हैं ! **(हंसता है)**—कहां हैं आपके महर्षि ! कहिए, मुझे भी अपने चिन्तन से उदबुद्ध करायें !

ऋषि दो : अभी तो वे देवी उर्वशी के यहां गये हैं !

इन्द्र : **(पलटकर वज्र की ओर देखता है)** ओह, मैं तो भूल ही गया था कि यह इन्द्रपुरी है।

ऋषि एक : देवी उर्वशी ने देवर्षि नारद के साथ उन्हें भी निमंत्रित किया है।

इन्द्र : क्यों ? हमारी अप्सरा को नारद से क्या काम पड़ गया ?

ऋषि दो : देवी उर्वशी सम्राट पुरूरवा के बारे में जानने को उत्कंठित हैं।

दोनों ऋषियों का आशीर्वाद देते हुए प्रस्थान।

इन्द्र : **(वज्र से)**....यह विश्वावसु कहां है !

वज्र : प्रहरी को भेजता हूं।

इन्द्र : इसे उर्वशी की पहरेदारी में रखा था....वहाँ कभी नहीं रहता !

प्रहरी का प्रवेश।

प्रहरी : सम्राट की जय हो ! द्वार पर महर्षि वसिष्ठ उपस्थित हैं।

वज्र द्वार की ओर जाता है। इन्द्र सिंहासन में तन जाता है। वसिष्ठ वज्र के आगे-आगे स्वस्ति-वाचन की मुद्रा में हाथ उठाये हुए प्रवेश करते हैं।

इन्द्र : आसन ग्रहण कीजिए महर्षि ! **(संकेत करता है। वसिष्ठ बैठते हैं)** अमरावती में कैसा लगा आपको ?

वसिष्ठ : **(हंसते हैं)** अमरावती में किसे अच्छा नहीं लगेगा देवेन्द्र !

इन्द्र : हां, जबकि वहां उर्वशी जैसी सुन्दरी अप्सराएं निमंत्रित करें !

वसिष्ठ : **(व्यंग समझकर)** मैं तो देवराज इन्द्र के निमंत्रण पर यहां उपस्थित हूं।

इन्द्र : ऋषि-कुलों से मिलकर कैसा लगा आपको !

वसिष्ठ : **(आह्लाद व्यक्त करते हुए)** आपकी कृपा के लिए आभारी हूं देवराज ! अपनों के बीच जैसा लगता है ! कई युवा ऋषियों के मंत्र सुने। क्या ही नवीन संकल्पनाएं हैं ! मन प्रसन्न हो गया !

इन्द्र : सुना है, आपने अपने ऋकों को वेद के नये मंडल में संकलित करने से मना कर दिया ?

वसिष्ठ : **(टालने की मुद्रा में)** वे पुराने पड़ गये हैं.... अब उनका अर्थ ही क्या है !

इन्द्र : अर्थ तो है। –इसे आप भी जानते हैं और मैं भी। आप केवल मंत्र-द्रष्टा ही नहीं हैं। आप अपनी कल्पना को साकार करने के लिए पिछले अनेक वर्षों से एक राजनीतिक आधार भी रच रहे हैं।

वसिष्ठ : वह तो हमारी-आपकी सामाजिक संकल्पना का अन्तर है जिसे कभी-कभी मैं अपने ऋकों में प्रकट करता हूं।

इन्द्र : उसका एक भिन्न वैचारिक आधार है। और हमारे ऋषि-कुल कहते हैं—वह अमंगलकारी है।

वसिष्ठ : **(आश्चर्य से)** अमंगलकारी ! किसके लिए ?

इन्द्र : उन सभी के लिए जिन्हें आप जानते हैं !

वसिष्ठ : जिन्हें मैं जानता हूं। **(रुककर)** हां....जिन्हें मैं जानता हूं उन्हीं के लिए तो मैं अपने ऋक् प्रस्तुत करता हूं।

इन्द्र : **(जैसे अनसुनी करते हुए)** या कि आप जानना नहीं चाहते। या कि उन्हीं काले लोगों को जानना चाहते हैं जिनके आप वंशधर हैं।....आपकी संकल्पनाएं सार्वभौम नहीं हैं ऋषि-प्रवर ! आप अपनी त्वचा के रंग से अपने ज्ञान को सीमित करते हैं। ....आप ऋषि हैं। आपको अपने सोच की परिधि इतनी संकुचित नहीं करनी चाहिए।

वसिष्ठ : आप ठीक कहते हैं देवराज ! मैं मनुष्यों और मनुष्यों में अन्तर देखता हूं। लेकिन उनके श्याम और गौर वर्ण के आधार पर नहीं। फिर भी उन्हें एक रूप में जानना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसीलिए मेरे ऋक् भी एकांगी हैं। वे सार्वभौम कैसे हो सकते हैं ! जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं उनके लिए एक ही संकल्पना कैसे हो सकती है !

इन्द्र : अर्थात् आप ऋक् की परम्परा को भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं।

वसिष्ठ : नहीं....मैं मात्र अनुकर्ता नहीं हूं परम्परा के नाम पर। मेरे पास इसके लिए समय नहीं है।

इन्द्र : आप बहुत व्यस्त हैं—यह तो मैं भी जानता हूं !

वसिष्ठ : मैं सिर्फ वस्तुओं, घटनाओं और प्रकृति के बिम्ब रचता हूं ! इससे अधिक मैं कुछ नहीं करता।

इन्द्र : लेकिन अगर आपके बिम्बों से अनार्यों और दस्युओं में उत्तेजना फैलती हो तो ?

वसिष्ठ : यदि एक ऋषि सत्य-द्रष्टा है तो ऐसा तो होगा ही।

इन्द्र : तो उसके लिए कौन उत्तरदायी है ?

वसिष्ठ : **(शान्त भाव से)** प्रकट है कि वस्तुओं की गति....वस्तुओं की गति में आने वाले अवरोध ! घटनाएं....घटनाओं की दिशा। प्रकृति....प्रकृति में होने वाले परिवर्तन....अनार्यों और असुरों के बारे में आपके विचार....।

इन्द्र : **(सिंहासन से उठकर टहलता हुआ)** मुझे विवाद में मत फंसाइए महर्षि ! मैं विवाद का आदी नहीं हूं। बताइए, आप उषा के बारे में ही ऋकों की रचना क्यों कर रहे हैं ?

वसिष्ठ : **(आह्लाद से सम्मोहित-सा)** मनुष्यों को प्रकाश की ओर, मनुष्यों को अग्नि की ओर, नयनाभिराम दृश्यों की ओर, उनकी अपनी ही आंखों की ओर, ऊर्जा की ओर, अधिकार की ओर, अस्तित्व की ओर, मनुष्यों को

अपनी ही माता की ओर ले जाना—यही तो है मेरा उषा-गान ! **(पलटकर)** क्या यह भी अपराध है देवेन्द्र.... !

इन्द्र : **(कठोर और भयप्रद स्वर में)** और आप जानते हैं कि विपाशा के तट पर मैंने उषा के रथ को चूर-चूर कर दिया था....और....

वसिष्ठ : और उसके रक्त से विपाशा का जल आज भी लाल है—यही न ! **(पीड़ा भरे आवेश में)....**नहीं, नहीं देवराज ! मैं यह नहीं कहता । मैं अपने मंत्रों में उस लालिमा को उषा माता के पाद-पद्मों का अलक्तक-बिम्ब कहता हूं....मैं तो उस रक्तिम लालिमा को प्रवाल-पंक्तियां कहता हूं ।

इन्द्र : आप क्या समझते हैं, आपके संकेतों को हमारे ऋषि-कुल, देव-गण और स्वयं हम नहीं समझते !

वसिष्ठ : **(दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम की मुद्रा बनाते हुए)** ऋषि-गण पूज्य हैं और देव-गण भी और आप भी ! मैं आप सभी को साक्षी बनाकर कहता हूं कि रक्त-रंजित ब्रह्माण्ड मेरी कल्पना के बाहर है ।

इन्द्र : तो जब भी आपके ऋकों का भाष्य किया जाता है उसमें सभी कुछ लहूलुहान क्यों दिखाई पड़ता है । **(व्यंग से)** क्या आपके रचे हुए बिम्ब इतने रहस्यमय हैं ! क्या आप इतने अबूझ हैं !

वसिष्ठ : नहीं, पूज्य ऋषि-कुलों ने कभी भी मेरे ऋकों का अनर्गल भाष्य नहीं किया।

इन्द्र : तो फिर ?

वसिष्ठ : क्षमा करें देवराज ! फिर यह कि आपके ऋषि-कुल और आपकी वन्दना करने वाले आर्यावर्त के वीर सम्राट—सभी उस नग्न-सत्य का दर्शन करने से घबराते हैं....

इन्द्र : **(विकृत अभिमान की मुद्रा में)** नग्न अप्सराएं तो मैंने बहुत देखी हैं ! यह आपका नग्न-सत्य क्या है ?

वसिष्ठ : **(थोड़ी उत्तेजना में)** निरर्थक रक्तपात....सारे ब्रह्माण्ड में फैलता हुआ अर्थहीन रक्तपात ! लेकिन आपके ऋषि-कुल इस पर उंगली नहीं रखते । आपके देव-गण भी । आपकी अभ्यर्थना करने वाले मनु-पुत्र भी । सभी आपके दुर्धर्ष शौर्य का बखान करते हैं । और आप गद्‌गद् होते हैं । और फिर आप उत्तेजित आनन्द में सोमपान करते हैं । अपने रक्तिम नेत्र बन्दकर अन्ध-गर्जना करते हैं । दिशाओं को कंपाते हैं । जलबन्धों को तोड़ते हैं । पुरों को नष्ट करते हैं ।....और फिर जब आप लौटकर आते हैं तो 'पुरन्दर' कहकर आपकी अभ्यर्थना की जाती है । इसमें उन अभ्यर्थियों को भी भाग मिलता है । वे युवा और वे वृद्ध और शिशु और कन्याएं और माताएं—जिन्हें आप युद्ध में जीतते हैं—सभी आपको अर्पित कर दिये जाते हैं । फिर आप उन्हें बांटते हैं—ऋषि-कुलों में, मनु के वंशजों में, गन्धर्वों में । उनकी सम्पत्ति ही नहीं—उनकी भूख, उनके अपमान, उनके भोलेपन, उनके शौर्य.... सभी कुछ को आप खण्ड-खण्ड कर देते हैं । फिर आप उनकी रंभाती हुयी गौवों और हिनहिनाते अश्वों के साथ उन्हें भी एक पशु

जगत में ढकेल देते हैं । — यही है आपके 'पुरन्दर' और 'इन्द्र' और 'घोर' और 'वृत्रहन्ता' और 'मघवा' होने का अर्थ....

इन्द्र : **(चकित और क्षुब्ध लेकिन शान्त)** आपके महा मन में उदित होने वाले इस बिम्ब की मैं प्रशंसा करता हूं ऋषिवर ! **(दोनों हाथों के संकेत से बुलाते हुए । दो सैनिक उपस्थित होते हैं और वसिष्ठ को उनके आसन से पकड़कर उठा लेते हैं)** जाइए महर्षि ! आपका स्थान वहीं है जहां हमारे धनुर्धर आपको ले जा रहे हैं । वहां आपका यह शब्द-सम्मोहन, आपकी यह मूर्च्छना, आपका यह आदिम और सनातन सन्निपात—कभी भंग नहीं होगा....

वसिष्ठ : **(रुककर—दर्शकों की ओर मुखातिब होते हुए)** सम्मोहन.... मूर्च्छना.... सन्निपात.... आपके लिए सारे शब्दों का अर्थ एक ही है ।

इन्द्र : **(जोर से)** वज्र, विश्वावसु ! कहां हो तुम लोग ! **(वज्र और विश्वावसु भागते हुए मंच पर आते हैं । इन्द्र की ओर भयभीत नेत्रों से देखते हैं)**

वज्र : **(शस्त्र निकालते हुए)** क्या आदेश है प्रभु !

इन्द्र : ले जाओ इस महामुनि को । और वहीं डाल दो इसे, जहां यह अपने मंत्रों के लिए प्रामाणिक अनुभव अर्जित कर सके । **(वज्र के संकेत पर सैनिक वसिष्ठ को ले जाते हैं । इन्द्र— विश्वावसु की ओर उन्मुख होते हुए)**.... कहां है उर्वशी ? नृत्य और संगीत का प्रबन्ध करो । **(विश्वावसु तेजी से जाता है । वज्र की ओर घूमते हुए)** और वृहद सोमपान का । दुखी कर दिया इस कुतर्की ने ! पूरा दिन और सारी सन्ध्या व्यर्थ गयी ! **(वज्र का प्रस्थान । इन्द्र दर्शकों की ओर घूमता हुआ)** हां...हां, मैं कहता हूं मैं 'पुरन्दर' हूं । मैं 'वृत्रहन्ता' हूं । मैं कुछ नहीं सोचता । मैं कभी....कुछ नहीं सोचूंगा । इस अखिल ब्रह्माण्ड में मेरे लिए **(वक्ष पर मुक्के मारता है)** हां....हां, मेरे लिए सोचने को है क्या ! मैं निर्बाध इच्छाओं का स्वामी हूं । मैं वही करूंगा जो मेरा मन होगा । जो मेरी इच्छाओं में बाधा उत्पन्न करेगा उसे मैं नष्ट कर दूंगा । **(धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश हलका होता जाता है और एक वृत्त इन्द्र के विकृत तनाव भरे चेहरे पर केन्द्रित हो जाता है । शेष अन्धकार)** चाहे वे मेरे पिता ही क्यों न हों । मैं सारे ब्रह्माण्ड को खंडहर में बदल दूंगा । कोई भी मेरा उत्तराधिकारी नहीं हो सकता । मैं सर्वज्ञ हूं, सर्वाधिकारी हूं, सनातन हूं, अकेला हूं ।....**(जोर से अंधेरे में चीखता है)**.... विश्वावसु.... विश्वावसु....



स
ज
ज
विश्वावसु : क्ष
है
इन्द्र : जा
की
सनत्कुमार : क्या
इन्द्र : कि
स्तुति
सनत्कुमार : कहूं
इन्द्र : और
सनत्कुमार : कौन
इन्द्र : आप
निपट
सनत्कुमार : फिर
इन्द्र : विश्वा
सनत्कुमार : कहूंगा
इन्द्र
है ।
इन्द्र : (चौंक
विश्वावसु : सम्राट
सनत्
निगाह
चलता
है ।
सनत्कुमार : आर्यावर्त
स्वागत
पुरूरवा
हिचकि
पुरूरवा
पुरूरवा : आर्यकुल
है ।
इन्द्र के
आसन त
जाता है
इन्द्र : (विश्वाव
अवगत क

दृश्य-चार

ज्ञा । दूसरा दिन । संध्या । मंच पर हल्का उजाला । साथ ही सभी आसन खाली । पर्दा खुलने पर इन्द्र दीखता है । उसके हाथ में भोजपत्र की पट्टिका है : वह चलते हुए पढ़ता है । बीच-बीच में रुक जाता श्वावसु उसके पीछे-पीछे चल रहा है । पट्टिका वह तोड़-मरोड़ कर उसे फेंक देता है ।

व से) सभी कुछ स्पष्ट है । केवल नदियों, पर्वतों और सौगन्ध नहीं है—ब्रह्माण्डों की भी है । ब्रह्माण्डों का शासक ज्ञाएं पुरूरवा करता है । **(घूमकर विश्वावसु से)**—तुमने देख ली है ? **(विश्वावसु स्वीकृति में सिर हिलाता है)** उसे पुनः बता दो, अप्सरा-धर्म के पालन का इससे सुन्दर लेगा । और सुनो ! अपने गन्धर्वों को चारों ओर बिछा दो.... । र्वशी 'मात्र अभिनय' ही करे ।

ले ही कर दिया है देवेन्द्र !

से व्यंग में) राजर्षि के रात्रि-विश्राम की व्यवस्था कहां

के अतिथि-गृह में ।

व से) प्रतिज्ञाएं....सौगन्ध ! लोग समझते नहीं विश्वावसु ! ा कल था वैसा ही आज भी रहेगा ! कल रम्भा की बारी शी की है । फिर भी ये सिरफिरे समझते हैं पृथिवी को बदल

से एक विनय है । **(इन्द्र घूमकर देखता है)** उर्वशी इन सुनती ! जब भी कहता हूं, 'केवल अभिनय, केवल नाट्य' ी है । जितनी बार दुहराता हूं उतनी बार हंसती है । फिर ो में लग जाती है....

ृत्य ?

ज होना है ।

लिए तैयारी कैसी ?

हा । इस पर बोली, 'एक ओर कहते हो मेरे धर्म-पालन का सर आ गया है और दूसरी ओर कहते हो, तैयारी कैसी ! गे कि मैं ?' इतना व्यस्त तो मैंने उसे कभी नहीं देखा । ने के नाट्याभ्यास से भी मना कर दिया है !

ता है) तुम्हारी गन्धर्व-बुद्धि को क्या हो गया है विश्वावसु ! । एक साथ कितने नाट्याभ्यास करेगी हमारी अप्सरा ! **ासन पर बैठ जाता है । विश्वावसु सोमरस से भरा**

हुआ चषक थमाता है । घूंट लेते हुए) कौन से नृत्य की तैयारी में निमग्न है हमारी अप्सरा ?

विश्वावसु : कामांग नृत्य !

इन्द्र : **(चषक खाली करते हुए विश्वावसु को पकड़ाता है)** पुरूरवा और कामांग नृत्य ! वनों और पर्वत-कन्दराओं में पला हुआ....संस्कारहीन, उद्धत....उसके लिए कामांग नृत्य ! हमारे लिए कभी नहीं.... । **(हंसकर)** हमारे लिए जो भी नाचो—वही कामांग नृत्य होता है ।

दोनों ऋषियों के साथ सनत्कुमार का प्रवेश ।

सनत्कुमार : देवाधिदेव सम्राट इन्द्र की जय हो !

इन्द्र : आसन ग्रहण कीजिए बाल-बैरागी ! क्या आप भी हमारी अप्सरा का कामांग नृत्य देखेंगे ? **(सनत्कुमार चौंकता है)** इसलिए कह रहा था कि इन दिनों देवर्षि नारद और महर्षि वसिष्ठ—सभी हमारी सुन्दरी अप्सरा के निमंत्रण पर आंखें बिछाये पहुंच जाते हैं !

सनत्कुमार : मैं तो महर्षि वसिष्ठ के बारे में आपसे कुछ निवेदन करना चाहता था ।

इन्द्र : **(तेवर चढ़ाकर)** कितने चिन्तित हो गये हैं आप लोग, वसिष्ठ के लिए ! आप लोग तो वर्षों से उन्हें बहिष्कृत किये हुए हैं ! और अब आपको महर्षि के बिना कुछ सूझता ही नहीं ! प्रतिदिन मेरे पास आवेदन आते थे, 'वसिष्ठ को निमंत्रित कीजिए, वसिष्ठ को बुलाइए ।' जानते हैं आप, कल ऋषियों की सभा में उन्होंने क्या किया ? उन्होंने मेरे सर्वाधिकार को चुनौती दी । और फिर....यहां, इन्द्रासन के निकट ! मेरे साथ दुर्व्यवहार ! मैं चाहता तो सेनापति वज्र का एक ही वाण उनके मस्तक को ब्रह्माण्डों के पार पहुंचा देता....उनकी प्रतिज्ञाएं धरी रह जातीं !

सनत्कुमार : वसिष्ठ अभी युवा हैं देवराज ! उनमें अनुभव की कमी है !

इन्द्र : **(सोमरस का चषक विश्वावसु के हाथों से ग्रहण करते हुए)** अनुभव की कमी ! जिसके पास ब्रह्म-विद्या नहीं होती उसी में आपको अनुभव की कमी दीखने लगती है । अनुभव की कमी से 'उषा-गान' जैसे मंत्र रचे जाते हैं । कैसा वर्णन करते हैं वह ! जैसे युद्ध में मेरे सारथी रहे हों ! उन्होंने देखा था कि जब मैंने उषा के ऊपर गदा से प्रहार किया तो उसके चेहरे पर क्या भाव थे ? उषा माता ! उषा माता ! जब कि वे जानते हैं कि मुझे इन माताओं से चिरन्तन घृणा है ! **(ऋषियों की ओर पलटकर)** और आप लोग....आप लोग इन्द्र के शौर्य को मलिन होने से बचाने के लिए क्या करते हैं ?

दोनों ऋषि : **(प्रसन्न होकर अपनी पत्रिकाएं खोलते हुए)** हमने आपके शौर्य के बखान में एक नये मंत्र-समूह की रचना की है देवराज !

इन्द्र : **(हाथों से मंत्र-पाठ की कोशिश को रोकता हुआ । व्यंग और चिढ़ से)** आप लोग बड़े प्रतिभाशाली हैं किन्तु मुझे थकाइए मत । फिर दर्शन दीजियेगा । **(दोनों ऋषियों का इन्द्र की ओर आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाये हुए प्रस्थान । इन्द्र सोमरस का चषक खाली करता है**

सनत्कुमार की ओर देखता हुआ और उंगली से द्वार की ओर जाते हुए ऋषियों की ओर संकेत करता हुआ)– अब यही रह जायेंगे–मेरा इतिहास रचने के लिए....यही–भण्ड, विदूषक और चाटुकार।

विश्वावसु : क्षमा करें देवराज ! मुझे नृत्य-प्रबन्ध के लिए देवी उर्वशी के पास जाना है ।

इन्द्र : जाओ और शीघ्र लौटो। **(विश्वावसु का प्रस्थान । इन्द्र–सनत्कुमार की ओर घूमकर)**– आप वसिष्ठ से कहते क्यों नहीं.... ?

सनत्कुमार : क्या कहना है देवेन्द्र !

इन्द्र : कि वे 'उषा-गान' के साथ मघवा **(अपनी ओर संकेत करता है)** की स्तुति भी जोड़ दें।

सनत्कुमार : कहूंगा।

इन्द्र : और अपना हठ छोड़ दें....

सनत्कुमार : कौन सा हठ ? अनार्यों और दस्युओं के बारे में ?

इन्द्र : आप भी क्या वही संवत्सरों पुरानी बात लिए बैठे हैं ! उस हठ से तो मैं निपट लूंगा।

सनत्कुमार : फिर कौन सा हठ ?

इन्द्र : विश्वासों का हठ ब्रह्मचारी ! विचारों और आस्थाओं का हठ !

सनत्कुमार : कहूंगा....लेकिन कैसे ?

इन्द्र हंसता है । तभी विश्वावसु हांफता हुआ द्वार पर प्रकट होता है ।

इन्द्र : **(चौंककर)** क्या हुआ ?

विश्वावसु : सम्राट पुरूरवा द्वार पर उपस्थित हैं !

सनत्कुमार उठकर द्वार तक जाते हैं । विश्वावसु घबरायी हुई निगाहों से द्वार की ओर देखने लगता है । सनत्कुमार के साथ चलता हुआ पुरूरवा प्रवेश करता है । सेनापति वज्र उसके पीछे है ।

सनत्कुमार : आर्यावर्त के प्रथम चन्द्रवंशी सम्राट, राजर्षि पुरूरवा का अमरावती में स्वागत है।

पुरूरवा तना हुआ है । वह सीधे इन्द्र को देखता है । इन्द्र थोड़ी हिचकिचाहट के बाद डगमगाता हुआ सिंहासन से उठता है और पुरूरवा को गले लगाता है ।

पुरूरवा : आर्यकुलों के महान संरक्षक, अद्वितीय योद्धा देवराज इन्द्र को मेरा प्रणाम है।

इन्द्र के चेहरे पर खुशी है । वह पुरूरवा को बगल में लेते हुए आसन तक जाता है और बैठने का संकेत करते हुए स्वयं भी बैठ जाता है ।

इन्द्र : **(विश्वावसु से : जनान्तिक में)** उर्वशी को उसके कर्तव्य से पूरी तरह अवगत करा दिया है न ?

विश्वावसु स्वीकृति में सिर हिलाता है। पुरूरवा घूरता है।

पुरूरवा : भद्र लोग अतिथि के उपस्थित होने पर जनान्तिक में बातें नहीं करते।

इन्द्र : **(कुछ अव्यवस्थित होता हुआ)** आपके आतिथ्य की व्यवस्था के बारे में निश्चिन्त होना चाहता था सम्राट !

पुरूरवा : आपके इस अति आधुनिक आतिथ्य के लिए उपकृत हूं !

इन्द्र : **(अप्रतिभ होता हुआ)** अति आधुनिक आतिथ्य !

पुरूरवा : हां, अति आधुनिक ! मेरे गुरु महर्षि वसिष्ठ को आपने यातना-गृह में डाल रखा है और मेरे आतिथ्य की चिन्ता आपको जनान्तिक में ले जाती है !

इन्द्र : **(हंसता है। पुरूरवा के आसन की ओर झुककर)** सम्राट पुरूरवा की इच्छा ही अमरावती में आदेश है। **(वज्र से)** सेनापति वज्र ! महर्षि वसिष्ठ के लिए तुरन्त अतिथि-गृह का प्रबन्ध करो और उन्हें सादर वहां ले जाओ। कहो, सम्राट पुरूरवा अमरावती में उपस्थित हैं। और ब्रह्मचारी सनत्कुमार भी। **(सनत्कुमार से)** जाइए न बाल-बैरागी ! महर्षि के दर्शनों को आप उत्सुक थे न !

सनत्कुमार का आशीर्वाद देते हुए प्रस्थान।

पुरूरवा : **(कुछ आश्चर्य से)** मैं कृतज्ञ हूं देवेन्द्र ! आप नहीं जानते .... **(इन्द्र बीच में ही टोक देता है)**

इन्द्र : जानता हूं.... सब कुछ जानता हूं ! आप सचमुच ही राजर्षि हैं। वसिष्ठ ठीक ही कहते हैं। चक्रवर्ती होने के योग्य हैं। देवताओं के भी वन्दनीय हैं आप। देखा होगा, अमरावती के नागरिकों ने किस तरह आपके स्वागत में नगर को सजाया है।

पुरूरवा : मुझे वन्दनाएं नहीं भातीं देवेन्द्र ! मुझे विचित्र लगता है। मुझे आदत नहीं है।

इन्द्र : **(हंसता है)** पड़ जायेगी.... आदत भी पड़ जायेगी। **(विश्वावसु से)**— सम्राट के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया सोमरस दो। और नृत्यांगना उर्वशी.... कहां है ?

पुरूरवा : मैं कन्दराओं का निवासी हूं....देखिए ....

इन्द्र : हमारा आतिथ्य तो चन्द्रवंशी सम्राट पुरूरवा के लिए है। उन्हीं को हम जानते हैं। उन्हीं की प्रतिज्ञाओं को जानते हैं। **(कनखियों से देखता है)**

पुरूरवा : उन्हीं प्रतिज्ञाओं को लेकर तो मैं यहां आया हूं।

इन्द्र : **(उदार भाव से)** मैंने कहा न, इन्द्रपुरी में सम्राट पुरूरवा की इच्छाएं ही आदेश हैं।

पुरूरवा : इच्छाएं नहीं देवेन्द्र, ये मेरे उद्देश्य हैं। और मेरी प्रार्थना है आपसे....

इन्द्र : **(गम्भीर भाव से)** मैं तो चाहता हूं, आप परम यशस्वी बनें।

पुरूरवा : मैं यज्ञ के विधानों में परिवर्तन चाहता हूं। **(इन्द्र चौंकता है)** मैं चाहता हूं गोधन, स्वर्ण, घृत और गोधूम की मात्रा कम कर दी जाय और जो गण देने की स्थिति में न हों, उन्हें मुक्त रखा जाय....

विश्वावसु सोमरस से भरे हुए दो चषक लाता है । इन्द्र लेता है लेकिन पुरूरवा हाथों के संकेत से मना कर देता है ।

इन्द्र : लीजिये न राजर्षि !

पुरूरवा : **(हंसते हुए)** मैंने कहा न, मैं वन्य हूं।

इन्द्र : **(एक ही सांस में चषक खाली कर देता है)** और !

पुरूरवा : आपने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी शायद ।

इन्द्र : आप जानते ही हैं सम्राट ! देवासुर संग्राम होने वाला है । ऐसे में युद्ध-व्यय बहुत बढ़ जायेगा । आपके सुन्दर विचारों से मैं पूरी तरह सहमत हूं लेकिन आप ही सोचिये, हम लोग लड़ेंगे कैसे ! रिक्त-हस्त ?

पुरूरवा : हम लोग कौन ?

इन्द्र : हम लोग । देवता और आर्य ! महान शक्तिशाली मघवा **(अपनी ओर संकेत करता है)** और **(उंगली से पुरूरवा की ओर संकेत करता है)** आर्यावर्त का महान वीर सम्राट पुरूरवा !

पुरूरवा : **(एकाएक हंसता है)** तब तो मुझे 'असुर' शब्द की नयी परिभाषा करनी पड़गी देवेन्द्र !

इन्द्र : यह कार्य तो आप महर्षि वसिष्ठ के लिए छोड़ दीजिए । आपको तो केवल युद्ध करना है ।

पुरूरवा : **(आत्मस्थ और दृढ़ निश्चयात्मक भाव से)** युद्ध ! हां केवल युद्ध....

इन्द्र : विश्वावसु ! **(जोर से पुकारता है । विश्वावसु पुनः भरा हुआ चषक देता है)** आपने कुछ कहा सम्राट !

पुरूरवा : हमारी सारी प्रजा अंधेरे में है देवेन्द्र !

इन्द्र : उन्हें आदत है सम्राट ! उन्हें अंधेरे में रहने दीजिए ।

पुरूरवा : उन्हें अग्नियां चाहिए ।

इन्द्र : **(चषक खाली करके विश्वावसु को पकड़ाता है)** जिनकी आंखें अंधेरे की अभ्यस्त हैं वे प्रकाश में अन्धे हो जाते हैं राजर्षि !

पुरूरवा : मैं वचनबद्ध हूं देवेन्द्र....

इन्द्र : **(अनसुनी करते हुए)** आपने हमारा विशिष्ट सोमरस नहीं पिया ! विश्वावसु ! **(विश्वावसु तेजी से आता है)** हमारे मान्य अतिथि को विशिष्ट सोमरस.... **(पुरूरवा की ओर देखता है)** नहीं.... अच्छा.... अच्छा ! विश्वावसु, विशिष्ट सोमरस से भरा हुआ स्वर्ण-कलश तो लाओ ! **(पुरूरवा से)** आपको शायद नींद आ रही है ! **(विश्वावसु स्वर्ण-कलश उठाये मचकता हुआ आता है । इन्द्र को देता है । इन्द्र पूरा कलश धीरे-धीरे खाली करता है । पुरूरवा उसे देखता रहता है । इन्द्र फिर एकाएक जोर से चीखता है)** बुलाओ उन ऋषियों को जिन्होंने मेरी अभ्यर्थना में नये मंत्र रचे हैं । सम्राट पुरूरवा को मेरे शौर्य की ओजस्वी गाथा सुनायें ! **(विश्वावसु इन्द्र के कान में कुछ कहता है । इन्द्र ध्यान से सुनता है)....** ओह, हां हां ! कहां है हमारी सुन्दरी अप्सरा ! हमारे मान्य अतिथि के सत्कार में जो अभिनव नृत्य....क्या नाम

है विश्वावसु ! हांआं कामांग नृत्य.... **(पुरूरवा की ओर विकृत मुस्कान से देखता है)** कामांग नृत्य राजर्षि.... कामांग नृत्य.... **(और अचानक सिंहासन से लुढ़क जाता है)**

विंग से एक दबी हुई खिलखिलाहट सुनाई पड़ती है । विश्वावसु डांटने की मुद्रा में भागता हुआ उस खिलखिलाहट की ओर जाता है । घूरता है । लौटता है तो पीठ-पीछे वही दबी हुई खिलखिलाहट फिर सुनाई पड़ती है । विश्वावसु दौड़कर द्वार की ओर जाता है । फिर घबराया हुआ लौटता है । इस बीच पुरूरवा अपने आसन पर अन्यमनस्क, उदासीन बैठा हुआ यह तमाशा देख रहा है । विश्वावसु बैठकर इन्द्र को उठाने का प्रयत्न करता है । उस क्षीणकाय गन्धर्व से इन्द्र का भारी-भरकम शरीर नहीं उठता । तब पुरूरवा अपने आसन से उठकर आता है और अपनी एक ही भुजा से इन्द्र को उठाकर खड़ा कर देता है । तभी वज्र और प्रहरी घबराये हुए आते हैं और इन्द्र को पकड़कर बाहर ले जाते हैं ।

पुरूरवा सन्नाटे में कुछ पल खड़ा रहता है । फिर धीरे-धीरे अपने आसन की ओर बढ़ता है । तभी विंग से उर्वशी कामांग नृत्य की विशिष्ट मुद्रा में 'छम्म' की आवाज के साथ मंच पर प्रवेश करती है । पुरूरवा की पीठ उसकी ओर है । पुरूरवा घूमकर देखता नहीं । वैसे ही अपने आसन की ओर बढ़ जाता है । उर्वशी नृत्य की उसी विशिष्ट मुद्रा में अप्रतिभ-सी खड़ी रहती है । पुरूरवा जाकर अपने आसन पर बैठ जाता है । पूरे मंच पर प्रकाश हल्का हो जाता है । केवल आलोक के दो वृत्त—एक पुरूरवा पर और दूसरा नृत्य की विशिष्ट मुद्रा में खड़ी उर्वशी पर केन्द्रित हैं । उर्वशी उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए एक-दो बार घुंघरू छनकाती है ।

अचानक पुरूरवा जैसे अपनी खिन्नता से बाहर आता है और एक-टक उर्वशी को देखने लगता है । कुछ इस तरह कि उर्वशी अस्त-व्यस्त हो जाती है और उसकी नृत्य-मुद्रा भंग हो जाती है ।

पुरूरवा : **(गम्भीर और शान्त स्वर में)** आपको इस वेष में देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है देवि !

उर्वशी अपने प्रसाधन को छू-छूकर देखने लगती है । अपने सारे अंगों को, श्रृंगार को निहारती है । तभी पुरूरवा उठता है और बाहर जाने लगता है । उर्वशी उसे बाहर जाते देख एकाएक दौड़ती है और उसके आगे जाकर खड़ी हो जाती है । और एकटक पुरूरवा की आंखों में देखने लगती है ।

उर्वशी : **(वैसे ही एकटक देखती हुई)** मुझे इस वेष में देखकर आपको कष्ट क्यों हुआ राजर्षि ! क्या मेरे श्रृंगार में कोई कमी रह गयी है !

पुरूरवा : आपके श्रृंगार को देखकर ही तो मुझे कष्ट हुआ।

उर्वशी : क्यों ? श्रृंगार को देखकर क्यों ? अप्सरा हूं तो क्या....मैं भी एक स्त्री हूं।

पुरूरवा : **(चुपचाप थोड़ी देर उर्वशी को देखता रहता है)** स्त्री के रूप में तो मैं केवल अपनी माँ को जानता हूँ। और मां को जानने का अर्थ मेरे लिए है....मां की यातना को जानना। क्योंकि आप भी एक स्त्री हैं, इसलिए मैं आपकी भी पीड़ा ही पहचानता हूं !.... इसीलिए मैंने कहा कि, आपको इस वेष में देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है....

उर्वशी : **(एकाएक दोनों बांहें उठाकर पुरूरवा के कन्धे पकड़ लेती है)** यदि स्त्री के रूप में आप मेरी पीड़ा के ही साक्षी हैं तो मुझे मुक्त क्यों नहीं करते.... मुझे स्वीकार क्यों नहीं करते ?

पुरूरवा इस तरह उर्वशी को देखता है जैसे कहीं बहुत दूर देख रहा हो। फिर अपने दोनों हाथों से अपने कन्धों पर रखे हुए उर्वशी के हाथों का स्पर्श करता है। फिर उन्हें नीचे हटा देता है ।

पुरूरवा : जाइए, प्रसाधन उतारकर विश्राम कीजिए ! आप बहुत थक गयी होंगी।

पुरूरवा जाने के लिए उद्यत होता है। उर्वशी अपनी गर्दन दूसरी ओर मोड़कर अपनी दाहिनी बांह पुरूरवा के रास्ते में फैला देती है। पुरूरवा क्षण भर उस बांह को देखता रहता है। फिर जरा झुककर उलटी हथेली पर अपने होंठ रखता है और फिर मंच से बाहर चला जाता है। उर्वशी उसी मुद्रा में खड़ी रहती है।

अन्धकार ।



सम्मोहन

मंच पर अंधकार । फिर एक आलोक-वृत्त भटकता हुआ उर्वशी पर केन्द्रित हो जाता है ।

उर्वशी : **(सम्मोहन की मुद्रा में)**— कितना घातक था तुम्हारा वह प्रथम स्पर्श ! एक युवा, बलिष्ठ होते हुए शिशु का इतना ठण्डा, और इतना उदासीन स्पर्श ! केवल छुवन भर थी उसमें ! कोई स्वीकार या अस्वीकार भाव नहीं था । .... जब मैंने तुमसे कहा, 'यदि स्त्री के रूप में आप मेरी पीड़ा के ही साक्षी हैं तो मुझे स्वीकार क्यों नहीं करते ।' इस प्रश्न पर कैसे एकटक निहारते रहे तुम.... मेरे पार, मुझसे दूर, जन्म-जन्मान्तरों के पार–जहां मेरा जन्म नहीं हुआ था, जहां स्त्री की पीड़ा का जन्म नहीं हुआ था ।.... और जब तुमने कहा, 'इस वेष में आपको देखकर मुझे कष्ट हो रहा है'... मुझे विश्वास क्यों नहीं हुआ ? मैं देखती रही स्तब्ध ! देखती रही कि कहां.... किन अगली शताब्दियों के पार से यह स्वर छनकर आ रहा है मेरे पास ! मैं पृथिवी माता को निहारती हुई लौट आयी ।.... किसी ने पहली बार मेरे विश्राम के बारे में सोचा ! पहली बार किसी को मेरी थकान की सुधि हुई.... अप्सरा हूं न ! केवल ऋषियों और तपस्वी राजर्षियों की तपस्या भंग करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है न ! प्रेम नहीं कर सकती....केवल अभिनय, केवल नाट्य ! देवराज इन्द्र के प्रमत्त विलासियों का दिन-रात मनोरंजन करना ही मेरे होने का उद्देश्य है न ! प्रति सन्ध्या प्रसाधन में घुटती हुई नृत्य करती हूं । फिर सारी रात ! और भोर के उजाले के साथ ही श्लथ होकर शैय्या पर गिर जाती हूं....

फिर मुस्कुराती हुई.... विवश मुस्कुराती हुई उठती हूं तो पता चलता है, द्वार पर भरतमुनि का दूत प्रतीक्षा कर रहा है । फिर सारा दिन नाट्य-भंगिमाओं के अभ्यास में बीत जाता है । और भरत मुनि ! **(विक्षिप्त-सी हंसती है)** उनका तो प्रत्येक नाटक सुखान्त होता है ! इस अखिल ब्रह्माण्ड में दुःख उनके लिए है ही नहीं ।

तुम जानते ।....तुम बलिष्ठ और युवा शिशु ! तुम यदि जानते कि नाटक के अन्त में जब नेपथ्य से 'भरत-वाक्य' की अनुगूंज सुनाई पड़ती है और जब वास्तव में मुझे बहुत भूख लगी होती है, और जब मेरा मन चिल्लाकर रोने को होता है, तब मैं अपनें नायक के संग अर्ध-नारीश्वर की मुद्रा **(बनाती है)** में मुस्कुराती हुई, दर्शकों को प्रणाम करती रहती हूं....

लो, इन प्रमत्त विलासियों के षडयन्त्र से मैं बाहर आती हूं । मैं नहीं चाहती कि तुम अग्नियों की मांग छोड़ दो । कि तुम महर्षि वसिष्ठ द्वारा दी गयी प्रतिज्ञाओं को तोड़ दो....कि देवासुर संग्राम के नाम पर इन्द्र के बर्बर अभियानों में शामिल हो जाओ....

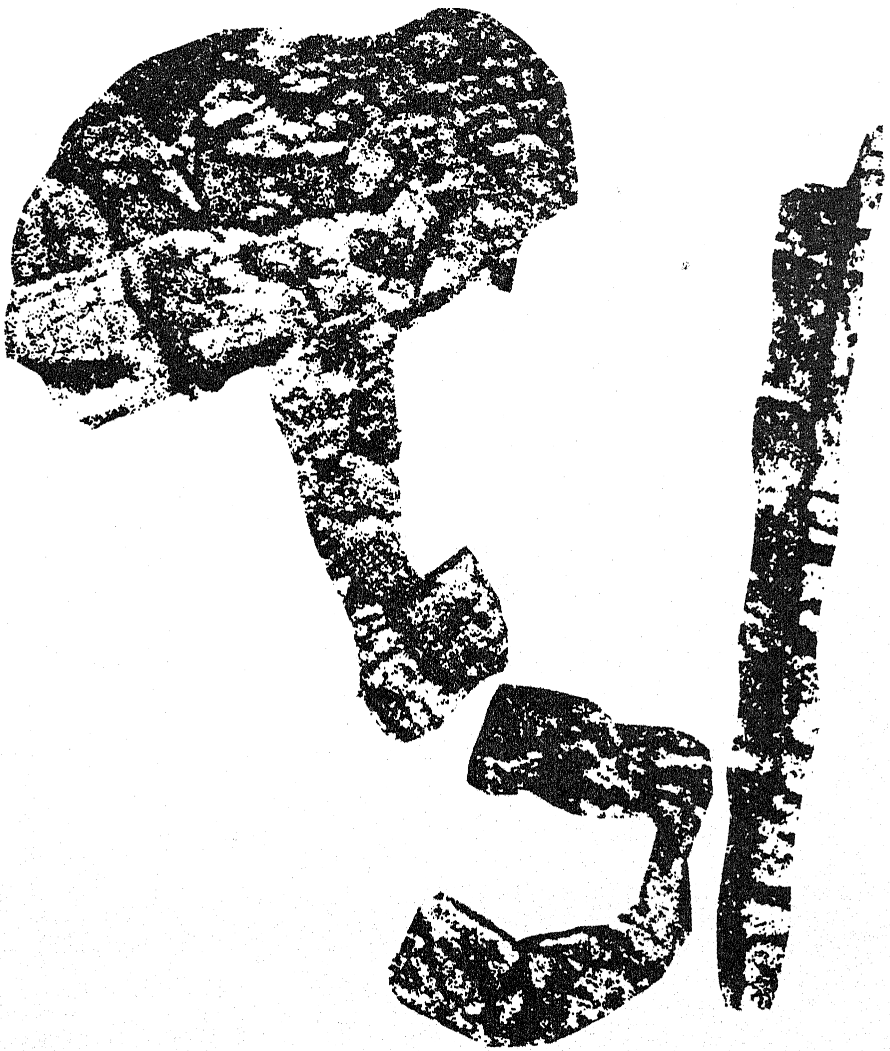
मुझे धारण करो । क्योंकि तुम्हारी अग्नि तो मैं हूं ।

देखो, मैंने सारे प्रसाधन उतार दिये हैं। जूड़े में कमल का लाल फूल और माथे पर रक्त-चन्दन की बिंदिया भी नहीं है! आओ....सिर्फ अपनी छुवन से मुझे संवार दो।
तुम्हीं हो—संवत्सरों के पार से आये हुए—जो मुझे देवलोक के नरक से मुक्त करोगे!
आओ। और देखो....तुम्हारे स्वर से मैं कैसी अनहोनी झंकार पैदा करती हूं.... आ ऽऽऽ ओ....
बाहें फैलाती है। एकाएक पुरूरवा का सम्मोहित अवस्था में प्रवेश। आलिंगन में लेते हुए। विशिष्ट मुद्रा बनाते हुए। दर्शकों की ओर उन्मुख.... उर्वशी से।

पुरूरवा : मैं तुम्हें अपने प्यार से अलंकृत करूंगा! मैं तुम्हें अपने उद्देश्यों से अलंकृत करूंगा! मैं तुम्हें अपनी अग्नि से अलंकृत करूंगा! मैं तुम्हें—तुम्हारी ही मुक्ति से अलंकृत करूंगा।
अन्धकार।



द्वन्द्व



दृश्य एक

एक जुलूस।
मंच पर तीव्र प्रकाश। एकाएक विंग से सेनापति वज्र का खूंखार मुद्रा में प्रवेश। धनुष पर तीर चढ़ाये हुए जैसे वह दूर अंधकार में घूरता हुआ, पुरूरवा को ढूंढ़ रहा है। उसके पीछे अपने चमकते खड्ग प्रहार की मुद्रा में उठाये हुए चार देव-सैनिक, समानान्तर, पंक्तिबद्ध रूप में एक-एक कदम बढ़ाते हुए चल रहे हैं। वज्र के साथ ही वे सभी दर्शकों की ओर देखते हुए लक्ष्य साधने की मुद्राएं बनाते हैं। फिर कभी आकाश की ओर, कभी नेपथ्य की ओर। उन सभी के चेहरों पर एक विकट खूंखारियत झलक मार रही है। इसी मुद्रा में वे एक-एक पग आगे बढ़ते हैं।

वज्र और देव-सैनिकों के पीछे तीनों मनु-पुत्रों—पृषध्र, नरिष्यन्त और नाभाग—का प्रवेश। तीनों वृहदाकार, अधेड़, थुलथुल, अय्याश। सिर पर मुकुट। कन्धों पर गदा। वे तीनों भी समानान्तर पंक्तिबद्ध रूप में एक-एक कदम—लय-ताल बद्ध....आगे बढ़ते हैं—कभी दर्शकों, कभी आकाश और कभी नेपथ्य की ओर.... धमकी, क्रोध और हिंसात्मक 'हुम हुम', 'हुम हुम' की आवाजें निकालते हुए।

मनु-पुत्रों के पीछे दोनों पुरोहितों—कश्यप और विभावक का समानान्तर पंक्तिबद्ध रूप में प्रवेश। गहरे लाल रंग के वस्त्रों में सज्जित। माथे पर लाल त्रिपुण्ड। चेहरे पर चिढ़, अभाव, लोलुपता और चाटुकारिता के भाव। वे भी कभी दर्शकों को, कभी आकाश और कभी नेपथ्य को घूरते हुए एक-एक पग आगे बढ़ते हैं।

दोनों पुरोहितों के पीछे नारद का प्रवेश। धवल वस्त्रों में सजे हुए । श्वेत त्रिपुण्ड। श्वेत घुंघराले केश—कन्धों पर उड़ते हुए। श्वेत लम्बी दाढ़ी। हाथों में वीणा—जिसे अत्यन्त आसक्त भाव से निहारते हुए वे कुछ-कुछ बौड़म नृत्य की मुद्रा में आगे बढ़ते हैं।

नारद के पीछे बाल ब्रह्मचारी सनत्कुमार का प्रवेश। मात्र कोपीन पहने हैं। सिर-दाढ़ी-मूंछ—सब कुछ मुंड़ा हुआ। सिर के बीचोबीच मोटी शिखा बंधी हुई। गले में रुद्राक्ष की माला। हाथ में कमण्डलु, जिसमें से वे बार-बार आम्र-पल्लव से जल निकाल कर छिड़कते हुए आगे बढ़ते हैं।

सनत्कुमार के पीछे भरत मुनि का प्रवेश । लम्बे, तैल-सिंचित केश । दाढ़ी-मूंछ सफाचट । हाथों में सोने की मूंठ वाली छड़ी । वे चारों ओर दुखी और खोजी निगाहों से देखते हुए एक-एक पग बढ़ते हैं ।

भरत मुनि के पीछे दोनों ऋषियों का प्रवेश । दोनों के कन्धों पर गठरियां लटक रही हैं । हाथों में भोज-पत्र । गले में कण्ठी । चेहरे पर झिझक, लज्जा और अपमान महसूस करने की मुद्रा । वे भी समानान्तर पंक्तिबद्ध रूप में आगे बढ़ते जाते हैं ।

दोनों ऋषियों के पीछे गन्धर्वराज चित्रसेन और विश्वावसु का प्रवेश । गहरे रंग का चमकीला घांघरा पहने हुए । आंखों में काजल, कानों में कुण्डल, गले में कण्ठहार, बांहों पर बाजूबन्द, सिर पर ऊंची तिकोनी टोपी तथा पांवों में घुंघरू । वे कनखियों से स्त्रैण मुद्रा में कभी दर्शकों, कभी आकाश और कभी नेपथ्य की ओर देखते हुए,कलाइओं से नृत्य की मुद्राएं बनाते हुए, 'छम् छम्' करते आगे बढ़ते हैं ।

दोनों गन्धर्वों के पीछे चार काली आकृतियों का प्रवेश । ऊपर से नीचे तक एक ही तरह के काले कपड़ों में ढंकी हुई । आंखों की जगह लाल-लाल खोखल । चारों कभी दर्शकों, कभी आकाश और नेपथ्य को धमकाती, चिंघाड़ती हुई आगे बढ़ती हैं ।

पूरा जुलूस मंच के पिछले भाग में विविध रंगी प्रकाश में 'हुम हुम' की लय-ताल बद्ध आवाज निकालता हुआ गोलाई में उन्हीं मुद्राओं में चक्कर काटने लगता है । इस पूरे क्रम में नेपथ्य से नगाड़े की 'कड़कड़ धुम्म', 'कड़कड़ धुम्म' का डरावना संगीत रुक रुककर बजता रहता है । जब नारद अपनी वीणा के संग दिखाई देते हैं तो नेपथ्य का यह डरावना संगीत वीणा के करुण, मन्द्र आलाप में बदल जाता है । जब सनत्कुमार आम्र-पल्लव से जल छिड़कते हुए दिखाई देते हैं तो नेपथ्य से यह समूह मंत्र-पाठ सुनाई पड़ता है :

यह जल कल्याणकारी है ।
यह जल औषधियों की औषधि है ।
यह जल राष्ट्र का संवर्द्धन करता है ।
यह जल अमृतों का अमृत है ।

यह मंत्र-पाठ गन्धर्वों के प्रवेश करते ही नृत्य की द्रुत झंकार में बदल जाता है । फिर काली आकृतियों के सामने आते ही वही लय-ताल बद्ध 'हुम हुम, हुम हुम' और उसे निर्देशित करती नगाड़े की 'कड़कड़ धुम्म कड़कड़ धुम्म' । इसी आवृत्ति के साथ पूरा जुलूस मंच के पिछले भाग में दो बार चक्कर लगाता है। फिर मंच के पिछले भाग में हल्का अन्धकार । जुलूस की लय-

ताल बद्ध 'हुम हुम' बन्द हो जाती है । नगाड़े की 'कड़कड़ बुम्म' भी बन्द हो जाती है । जुलूस उस छायामय अंधेरे में निःशब्द चक्कर काटने लगता है । और फिर उसके पात्र उसी क्रम में जुलूस से टूटकर मंच के अग्र भाग में आते हैं और संवाद बोलते हैं । शेष जुलूस पूर्ववत् निःशब्द चक्कर काटता रहता है । संवाद बोलने के बाद वे पात्र पुनः उस जुलूस में शामिल होकर चक्कर काटने लगते हैं और दूसरे पात्र उसी पूर्व-वर्णित क्रम से मंच के अग्र भाग में आकर अपना संवाद बोलते हैं ।

जुलूस से टूटकर वज्र और चारों देव सैनिकों का मंच के अग्र भाग में प्रवेश ।

वज्र : सभी दिशाओं में अग्नि की तरह जल उठो । सारे वनों को प्रभंजन की तरह झकझोर डालो । पर्वतों को खूंद डालो । आकाश को रौंद दो । नदियों को खंगाल डालो । पुरों और जनपदों को श्मशान में बदल दो । लेकिन उसे पकड़ लो—जीवित या मृत ।.... जाओ, हेमकूट की स्वर्णिम घाटियों में । जाओ, गन्धमादन पर.... सिंहों की दहाड़ के बीच । जाओ, पिंजर, वैदूर्य और त्रिश्रृंग के लाल कुहरे में । जाओ, अच्छोद सरोवर के नीले जल-दर्पण में । चैत्ररथ वन की सर्प-सीत्कारों में—जाओ । जहां भी छिपा हो, पकड़कर लाओ उसे जीवित या मृत । महान वृत्रहन्ता के चरणों में डाल दो । ....जाओ ।

चारों देव-सैनिक : हमारे महाबली सेनापति वज्र की जय हो ।

सभी जाकर जुलूस में शामिल । पृषध्र नरिष्यन्त और नाभाग का जुलूस से टूटकर मंच के अग्र भाग में प्रवेश ।

नरिष्यन्त : हमने उस अनार्य ब्राह्मण वसिष्ठके हाथ-पांव बांधकर नदी में फेंक दिये थे । लेकिन वह बच निकला । वह कहता है, नदी ने उसके पाश छिन्न-भिन्न कर दिये । इसीलिए वह नदी को 'विपाशा' कहता है । अब वह पुरूरवा को संवर्द्धित करने में जुटा हुआ है । और इन्द्र भी उसे निमंत्रित करते हैं ।

पृषध्र : इसके लिए भी पिता मनु ही दोषी हैं । वही इस अनार्य को इला का भाई कहते थे । वही इसके श्याम वर्ण की प्रशंसा करते नहीं थकते थे । उन्होंने ही इसे पाला-पोसा, ऋषि-कुलों में भेजा । उन्होंने ही इसे महान प्रतिभा-सम्पन्न, कवि, मंत्र-द्रष्टा, विचारक और संत घोषित किया....

नाभाग : हम इन्द्रपुरी में ही थे । हमें निमंत्रित किया गया था । फिर हमें सभा से अलग रखा गया । हम प्रतीक्षा ही करते रह गये । और पुरूरवा से भितरघाती बातें होती रहीं । शायद हमारे साम्राज्य में भी उसकी भागीदारी घोषित होने वाली थी । बताइए, हमें सभा में न बुलाने का और कारण भी क्या हो सकता था ! और हम इतनी बार इन्द्रपुरी आये, दस्युओं के साथ युद्ध किया । इन्द्र को जिताया । किन्तु कभी भी हमारे सम्मुख उर्वशी को प्रस्तुत नहीं किया गया ।.... और उस कुलांगार के लिए कामांग नृत्य.... ?

नरिष्यन्त : सोचो, क्या करना है !

पृषध्र : हम सम्राट हैं.... सोचें क्यों ?

नाभाग : तो चलो, पुरूरवा को सन्धि-प्रस्ताव भेज दें।

नरिष्यन्त : चलो, हमें मुक्ति मिले।

पृषध्र
नाभाग
नरिष्यन्त : चलो, चलो....शीघ्र चलो.... शीघ्र चलो।

तीनों पुनः जुलूस में शामिल। दोनों पुरोहितों—कश्यप और विभावक का जुलूस से टूटकर मंच के अग्र भाग में प्रवेश।

विभावक : **(कश्यप को समझाते हुए)** देखो मित्र ! ब्राह्मण कभी धीरज नहीं खोता। बात बनेगी। बनेगी कैसे नहीं ! सुनो, घबराओ मत। अभी कुछ-न-कुछ निर्णय होगा , और यदि आवश्यक हुआ तो हम अपनी स्वामिभक्ति बदल देंगे। इन्द्र नहीं, पुरूरवा सही। जो हमें भरेगा उसी की बजायेंगे। हमें अपनी गौवें दुहना भले ही न आये, वसिष्ठ की विनम्रता को अवश्य दुह लेंगे। तुम्हें उनके चरणों में डाल देंगे। चरणों में लोटने में तो तुम सिद्धहस्त हो ही। सुना नहीं, पुरूरवा यज्ञों को लूटने पर तुला हुआ है। तो सिंह के बचे-खुचे जूठन पर अपनी वृत्ति के अनुसार तुम चोंथने में जुट जाना। **(रुककर)** और इन लाल वस्त्रों में तुम विद्वान भी लगते हो। तो वसिष्ठ जो सोचेंगे, उसे चुराकर तुम वायुमण्डल में फैला देना और ऋषि की उपाधि से विभूषित हो जाना....

कश्यप : धीरे बोलो, नहीं तुम्हारी जिह्वा को पक्षाघात हो जायेगा।

विभावक : श्रोता तो तुम्हीं हो। यदि तुमने यह भेद खोला तो तुम कर्णशूल से मरोगे।

दोनों पुनः जुलूस में शामिल। नारद और सनत्कुमार का जुलूस से टूटकर मंच के अग्रभाग में प्रवेश।

नारद : **(अपनी वीणा को निहारते हुए)** जहां भी जाता हूं पृथिवी पर.... वही लोम-हर्षण ! —जहां भी जाता हूं...पुष्कलवती, सारस्वत, त्रिगर्त.... काशी श्रीरंगम, जहां भी जाता हूं ! गंगा या यमुना, सरस्वती या विपाशा, सिन्धु या कुभा, शिप्रा या सदानीरा....वेत्रवती.... मरुदृथा—जहां भी नहाता हूं.... वैसी ही तपन, वैसा ही अशान्त मन !

सनत्कुमार : ऐसा क्यों ? ऐसा क्यों भ्राता देवर्षि ! आपका सुर तो वीणा के तारों के संग सधा हुआ था। उसके बाहर का यह भयोत्पादक विवादी स्वर.... आपको कैसे सुन पड़ा ?

नारद : सच का विवादी स्वर कौन है ? इन्द्र या पुरूरवा ?

सनत्कुमार : **(चारों ओर जल छिड़कते हुए)** भ्राता देवर्षि ! सभी कुछ सत्य है, सभी कुछ असत्य। सभी कुछ विवादी है, सभी कुछ संवादी। सभी आलोक है, सभी अन्धकार।

नारद : ओहो, तो सच का विवादी स्वर तुम्हीं हो ! सच का विवादी स्वर सचमुच भयोत्पादक है !

दोनों पुनः जुलूस में शामिल। भरत मुनि का जुलूस से टूटकर मंच के अग्र भाग में प्रवेश।

भरतमुनि : रंगशाला सूनी है। कहां है उर्वशी ? वह मेरी वृत्ति है ! वह मेरा आपद्धर्म है ! कहां है उर्वशी !.... कहीं नहीं होगी वह, रंगशाला के अतिरिक्त।

आनन्द का नाट्य.... यही उसकी अन्तिम नियति है ।.... रंगशाला सूनी है ! कहां है उर्वशी ? वह मेरा सपना है !

पुनः जुलूस में शामिल । दोनों ऋषियों का टूटकर मंच के अग्र भाग में प्रवेश ।

ऋषि-एक : कोई आवेग नहीं....कोई दृश्य-पटल नहीं.... कोई प्रतिरोध नहीं ।

ऋषि-दो : जो कुछ उत्तेजक है....सच है– उसे मंत्रों में देख नहीं सकते ।

ऋषि-एक : हम किसके प्रतिनिधि हैं ?

ऋषि-दो : सारे ऋषि-कुलों के ।

ऋषि-एक : सारे ऋषि-कुल किसके प्रतिनिधि हैं ?

ऋषि-दो : शून्य के....शून्य के ।

ऋषि-एक : भाव नहीं....छन्द नहीं....सत्य नहीं ।

ऋषि-दो : केवल प्रशस्ति....केवल असत्य । सभी कुछ गंदला और धूमिल और अर्थहीन ।

ऋषि-एक : फिर भी किये जाओ, किये जाओ—प्रकृति को निर्वसन, पर्वतों को काला, हरियाली को श्वेतवर्ण....

ऋषि-दो : मौन ? और मौन अपराध है ।

ऋषि-एक : कह नहीं सकते कि सगुन हैं वसिष्ठ ।

ऋषि-दो : कह नहीं सकते कि शुभ हैं पुरूरवा ।

ऋषि-एक : हम किसके प्रतिनिधि हैं ?

ऋषि-दो : प्रतिभा-पठार के । जीवित निचाट आत्मघात के ।

ऋषि-एक : चलो, कहीं भाग चलें ।

ऋषि-दो : चलो, कहीं सांस लें ।

ऋषि-एक : चलो, कहीं देखें ।

ऋषि-दो : चलो, कहीं सुनें ।

ऋषि-एक : क्या यह सम्भव है ?

ऋषि-दो : क्या यह सचमुच असम्भव है ?

दोनों पुनः जुलूस में शामिल । चक्कर काटता हुआ जुलूस एकाएक तीव्र प्रकाश के भीतर । वही लय-ताल बद्ध 'हुम हुम हुम' । और नगाड़े की 'कड़कड़ धुम्म' । जुलूस पूरे मंच का एक गोल चक्कर लगाता हुआ विंग में गायब हो जाता है ।

अन्धकार ।



दृश्य-दो

मंच पर तीव्र प्रकाश । चित्रसेन के पीछे पीछे घबराये हुए विश्वावसु का प्रवेश ।

विश्वावसु : मेरे पैरों में कंपकंपी हो रही है । मेरे कानों में झंझा का आवेग बज रहा है! मेरी आंखों में महामेरु का पिघलता हुआ लावा घुसा जा रहा है....

चित्रसेन : घबराओ मत, मैं 'गन्धर्वराज चित्रसेन', तुम्हें लेकर चलूंगा ।.... मैं इन्द्र को जानता हूं ।

विश्वावसु : **(दुःख आतंक और घृणा से)....** आप क्या जानते हैं !.... आप कुछ नहीं जानते !

चित्रसेन : लेकिन.... तुम थे कहां उस समय ? और तुम्हारे गन्धर्व कहां थे ?

विश्वावसु : मैं कहीं भी होऊं.... अब यह बताने से क्या होगा । मुझे आज्ञा दीजिए.... मैं जाऊंगा और मंदाकिनी में जल-समाधि लूंगा । जितना भी शीघ्र सम्भव हो । और कोई रास्ता नहीं है । आप अकेले ही जाइए । **(दयनीयता का प्रदर्शन करते हुए)** और मुझे इस उद्दण्डता के लिए क्षमा कीजिए ।

चित्रसेन : **(ढाढ़स बंधाते हुए)....** लेकिन तुम थे कहां ?

विश्वावसु : अब मैं क्या बताऊं....

चित्रसेन : तो तुम.... वहां नहीं थे ।

विश्वावसु : मैं वहां था....लेकिन तब पहुंचा जब वह उर्वशी को लेकर निकल रहा था । उसका बायां हाथ उर्वशी के कटि-प्रदेश को घेरे हुए था । वह भय से उसके वक्ष में समायी हुई थी ।.... और उसके दायें हाथ में देवलोक की पवित्र अग्नियां थीं जो भागते हुए रथ में हवा के वेग से आकाश तक लहरा रही थीं । सारे इन्द्रलोक का आकाश उन अग्नियों की चमक से गेरुआ हो रहा था । मैं तो उसे देखते ही निःसंज्ञ होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । जब तक मेरी संज्ञा लौटी वह हवा हो चुका था....

चित्रसेन : **(क्रोध में)** लेकिन तुम वहां पहले से क्यों नहीं थे ?

विश्वावसु : आप क्यों बार-बार एक ही बात पूछ रहे हैं स्वामी !

चित्रसेन : इसलिए कि मैं जानना चाहता हूं । इसलिए कि तुम्हें विशेष रूप से उर्वशी की संरक्षा में नियुक्त किया गया था.... इसलिए कि मुझे इन्द्र को उत्तर देना पड़ेगा ।

विश्वावसु : उन्होंने मुझे और भी तो काम सौंप रखे थे ।

चित्रसेन : और भी काम ?

विश्वावसु : मुझे अभिसार के लिए जाने वाली देव-वधुओं को उनके प्रेमियों तक सुरक्षित पहुंचाना पड़ता था ।

चित्रसेन : अच्छा....तो यह रहस्य है— तुम्हारे इस रेशमी घांघरे, इस स्वर्ण-माल और इस रत्न-जटित बाजूबन्द का !

विश्वावसु : वह तो आप भी पहने हैं !

चित्रसेन : **(मारने के लिए लात उठाता है)....** अच्छा.... मुझसे तुलना करेगा तू ! जो मैं पहनूंगा, तू भी वही पहनेगा। जो मैं करूंगा .... तू भी वही करेगा !

विश्वावसु : **(परे हटते हुए)**....और मान लीजिए, मैं वहां होता तो ?

चित्रसेन : मूर्ख....मउगड़े ! तू वज्र को सूचना भिजवा सकता था !

विश्वावसु : तो ? वज्र क्या कर लेता ?

चित्रसेन : क्यों....वज्र क्या तेरी तरह नपुंसक है ?

विश्वावसु : **(मिन्नत और समझाने के स्वर में)** स्वामी ! आप क्यों नहीं समझते ....पुरूरवा ने उर्वशी का बलपूर्वक हरण नहीं किया है।

चित्रसेन : **(खड़ा हो जाता है)** क्या कह रहा है तू ?

विश्वावसु : मैं ठीक कह रहा हूं स्वामी !

चित्रसेन : यह कैसे हो सकता है ! ना.... यह असम्भव है– असम्भव !

विश्वावसु : **(उर्वशी के प्रति दया और सहानुभूति से बड़बड़ाते हुए) ....** उसे तो और पहले ही चले जाना चाहिए था ....

चित्रसेन : **(जैसे सोचता हुआ) ....** और फिर वह एक अप्सरा है, गन्धर्व-कन्या है ! वह जानती है कि उसका जाना निरर्थक है ! वह पुरूरवा से विवाह नहीं कर सकती। वधू के रूप में उसे कौन स्वीकार करेगा ! न देवता, न दस्यु.... न मनुष्य। वह तो मात्र रमण के लिए है ! **(एकाएक विश्वावसु की ओर घूमकर उसे घूरता है और फिर उछलकर उसकी गर्दन दबोच लेता है)**....सच-सच बताओ, क्या तुम भी पुरूरवा के साथ इस षडयन्त्र में सम्मिलित हो ?... बोलो.... क्या तुमने उर्वशी को भी उसके प्रेमी तक सुरक्षित पहुंचाने का कार्य-भार निभाया....

विश्वावसु : **(घिघियाते हुए)** कितना अच्छा होता.... यदि ऐसा ही हुआ होता !

चित्रसेन : **(हिकारत से परे हटते हुए)....** कुटिल !... विश्वासघाती !... स्त्रियों के रखैल !...

विश्वावसु : **(जैसे बिफर कर)....**क्या जानते हैं आप मेरे बारे में ? कुछ भी बोल देते हैं.... क्योंकि आप राजा हैं.... ! ठीक है कि मैं स्त्रियों का मुंहलगा हूं। कि मैं उनके वे काम करता था जो एकान्त में स्त्रियां ही स्त्रियों के लिए करती हैं। मैं उनके पांवों के घिसे हुए अलक्तक छुड़ाता था.... फिर उन्हें नये अलक्तक से रंगता था, उनकी हथेलियों पर मेंहदी रचाता था.... वक्ष को चन्दन-चर्चित करता था.... माथे पर विशेषक बनाता था.... केशों में पुष्प-मालायें गूंथता था। देव-कन्याओं और देव-वधुओं के लिए ही नहीं....उर्वशी के लिए भी यह काम करता था मैं ! लेकिन आप क्या समझेंगे मुझे ?....छिछोरा और लोलुप और स्त्रियों का रखैल.... ? समझते रहिए। अब क्या अन्तर पड़ता है–आपके समझने या मेरा गला दबोच कर मारने से। मैं तो तभी जानता था कि जिस दिन उर्वशी गयी–उसी दिन मेरी मृत्यु निश्चित है ! **(रुककर–चित्रसेन को घूरते हुए)** लेकिन क्यों करता था मैं– यह सब ? क्यों करता था ? इसलिए कि स्त्रियां भी शायद जानें.... कि उनका सम्मान भी किया जा सकता है....कि बिना लोलुप दृष्टि

के भी.... मात्र सराहते हुए भी.... उन्हें देखा जा सकता है....कि वे मात्र रमण की निर्जीव वस्तुएं ही नहीं हैं।.... उनकी देहयष्टि, उनके नेत्र, उनके वक्षस्थल, उनके नितम्ब.... उनका सम्पूर्ण अस्तित्व.... अपने सौन्दर्य में स्वतंत्र भी है। लेकिन आप राजन्य वर्ग के लोग...इसे क्या समझेंगे! **(निराशा में हाथ में झटकते हुए बैठ जाता है)**

चित्रसेन : **(अविश्वसनीय आश्चर्य से देखता रहता है। फिर पास जाकर)....** लेकिन तुझे पता था कि उर्वशी अपनी इच्छा से जा रही है तो तूने इन्द्र को बताया क्यों नहीं?

विश्वावसु : **(उसी तरह सिर नीचा किये हुए)** मैं इस बात को पूरी तरह नहीं जानता था।

चित्रसेन : यदि तुझे सन्देह भी था तो तूने अपना सन्देह इन्द्र पर व्यक्त क्यों नहीं किया?

विश्वावसु : **(ऊपर निगाहें उठाकर। सीधे चित्रसेन की आंखों में देखते हुए)....** क्योंकि मैं चाहता था कि मेरा सन्देह सच हो जाय।

चित्रसेन : **(समझ नहीं पाता कि कैसे पेश आये)** अच्छा....तू चाहता था?

विश्वावसु : मैं ही क्यों.... यहां सभी चाहते थे कि यही हो।.... और अग्नियों के बारे में भी। सभी प्रसन्न हैं। कोई देव-सैनिक नहीं चाहता था कि एक पूरी जाति अंधेरे में रहे.... और यहां वे अग्नियों पर पहरा देते रहें....

चित्रसेन : **(विश्वावसु के कन्धे पकड़कर झकझोरते हुए)....** क्या कहना चाहता है तू? .... वह अग्नियां भी छीन कर नहीं ले गया?

विश्वावसु : छीनकर क्यों ले जाता.... जब अग्नियां उसे आदरपूर्वक समर्पित कर दी गयीं।

चित्रसेन : आदरपूर्वक?

विश्वावसु : आप इस तरह चकित क्यों हो रहे हैं स्वामी! आप लोग वही जानते हैं जो आपको जनाया जाता है.... और वह बहुधा सच नहीं होता।.... वसिष्ठ ने देव-सैनिकों से कहा, 'देखिये, एक तो हम अतिथि हैं आपके। और अतिथि की इच्छा का सम्मान करना आपका धर्म है। दूसरे, आपकी ही तरह एक पूरी जाति.... अनेक पुर, अनेक जनपद, बूढ़े... बच्चे....स्त्रियां....नवयुवक —एक पूरा लोक अंधेरे में सीझ रहा है। क्या आप अपने बन्धुओं को आलोक प्रदान नहीं करेंगे.... क्या उन्हें पवित्र और प्रकाशमय जीवन से वंचित रखेंगे?' .... और देव-सैनिकों ने अग्नियां पुरूरवा को सौंप दीं।

चित्रसेन : तो यह बात है— और यहां हल्ला मचा हुआ है कि इन्द्र बहुत दुखी हैं.... उनके सम्मान को बहुत ठेस लगी है।

विश्वावसु : **(व्यंगपूर्वक हंसता है)** ....दुखी तो वे क्या होंगे! किसके लिए होंगे! वैसा विक्षिप्त व्यक्ति दुखी हो सकता है! हां, उनके सम्मान को अवश्य ठेस लगी है। **(चित्रसेन अचानक उसे घूरने लगता है)** लेकिन पुरूरवा ने उनके सम्मान को ठेस नहीं पहुंचायी है!

चित्रसेन : फिर?

विश्वावसु : उनके सम्मान को ठेस तो हमने पहुंचायी है...देव-सैनिकों ने पहुंचायी है.... इन्द्रपुरी की सारी जनता ने पहुंचायी है.... जो इस काण्ड से परम प्रसन्न है ।

चित्रसेन : **(गम्भीरतापूर्वक)** देखता हूं, तू सोचने-विचारने का स्वांग भी करने लगा है !

विश्वावसु : वह तो अमरावती में किसी के बस की बात नहीं है । **(रुककर)**.... यहां तो सभी एक प्रकार के अनैतिक आनन्द से पीड़ित हैं....

चित्रसेन : बस-बस । **(झटके से विश्वावसु को उठाकर खड़ा कर देता है)** तेरी स्त्री.... तेरी दोनों पुत्रियां और तेरा इकलौता पुत्र.... **(रुकता है। विश्वावसु एकाएक दयनीयतापूर्वक उत्सुक हो उठता है । चित्रसेन विकृत और क्रूर ढंग से मुस्कुराता है)**.... कहां हैं, जानते हो न ! **(ढकेल देता है)** मेरे पास....मेरे नगर में । वहां रत्न-जटित सौध में सुख भोग रहे हैं । किसके बलबूते पर ? और तू यहां सिद्धान्त बघार रहा है । नैतिकता की मथानी तुझे मथे जा रही है.... तुझ स्त्रैण, भँड़ुए को । और सुन ले, मैं और पूरा गन्धर्व-देश एक उर्वशी के पीछे इन्द्र का कोप-भाजन नहीं बन सकता । हम तुम्हारी भंड़ैती के बहकावे में आकर अपने को नष्ट नहीं कर सकते....समझे ! **(लात मारता है)** ....और तू....जल-समाधि नहीं लेगा ! तू वही करेगा, जो मैं....तेरा मालिक, तेरा स्वामी....तुझे आदेश दूंगा । **(ढकेलता हुआ बाहर ले जाता है)**
प्रस्थान । अंधकार ।



दृश्य-तीन

मंच पर तीव्र प्रकाश। इन्द्र अपने सिंहासन पर अधलेटा बैठा है। ऊपर देख रहा है। वज्र उसके सामने नत-मस्तक हाथ बांधे खड़ा है।

वज्र : **(थोड़ा झुकते हुए। दयनीय और दुखी स्वर में)** मुझे दण्ड दीजिए प्रभु !

इन्द्र : **(जैसे नींद से चौंकता है। फिर पहले द्वार की ओर देखता है)** द्वार बन्द है न ! **(वज्र जाता है और द्वार बन्द कर आता है। इन्द्र हंसते हुए)** दण्ड.... और तुम्हें ! तुम, जो मेरे अर्द्धांग हो.... तुम, जो मेरे आत्मा से भी अधिक मेरे अपने हो ! **(हाथ बढ़ाकर वज्र को स्पर्श करते हुए)** .... तुम, जो मेरी दाहिनी भुजा से भी अधिक विश्वस्त हो !

वज्र : **(एकाएक इन्द्र के चरणों में गिर जाता है)** नहीं प्रभु.... मैं दण्ड का भागी हूं। मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिए प्रभु !

इन्द्र : **(उठाते हुए)** उठो और वह पट्टिका **(संकेत करता है)** मुझे दो। **(वज्र थोड़ी उत्सुकता से इन्द्र के चेहरे को देखता है। फिर पट्टिका उठा कर इन्द्र को देता है। इन्द्र पट्टिका को फैलाता है। फिर एक स्थान पर उंगली रखता है और वज्र को देखकर मुस्कुराता है)** वज्र ! यहां आओ.... देखो। **(वज्र पट्टिका पर रखी इन्द्र की उंगली के पास देखता है)** वज्र ! तुम जहां समझते हो वहां द्वन्द्व नहीं है। द्वन्द्व तो यहां है– यहां.... समझे ! **(वज्र पट्टिका पर उस नाम को देखता है... फिर इन्द्र के चेहरे को–जैसे आश्चर्य से। इन्द्र उसके केश सहलाता है) ....** और तुम दण्ड की बात करते हो ! हमें तो लड़ना ही नहीं है। अमरावती में द्वन्द्व क्यों हो.... और हम क्यों लड़ें ! हम मात्र एक घातक दर्शक होंगे....और घटनाओं के विघातक निर्देशक।.... और युद्ध करना ही हुआ तो हम युद्ध नहीं करेंगे।.... हम प्रलय करेंगे ....प्रलय !

वज्र : लेकिन वृत्रहन्ता ! इतना कुछ घटित हो गया !

इन्द्र : कुछ तो नहीं हुआ। केवल उस दिन विषपान से मैं थोड़ा अस्वस्थ हो गया था।

वज्र : **(आवेश में)** क्या यह सच है प्रभु !

इन्द्र : **(हंसता है)** सनातन काल से तुम मेरे सेनापति हो....तुम कब समझोगे ? घटनाओं में जो तथ्य होता है उसे अपने लक्ष्यों के अनुसार तोड़ना-मरोड़ना.... उसे विकृत करके एक नये सनातन सच लगने वाले तथ्य का रूप देना....तुम कब समझोगे ? परिस्थितियां और घटनाएं कभी मेरे प्रतिकूल नहीं जातीं। क्योंकि मैं उन्हें उलट देता हूं। अनादि काल से ये देव और दस्यु और मनुष्य यह प्रयत्न कर रहे हैं ! किन्तु प्रत्येक बार मैं

प्रतिकूल के प्रतिकूल हो जाता हूं ।.... इसीलिए तो मैं 'हूं' और मैं 'रहूंगा' ।.... अब क्या यह नहीं हो सकता कि पूरा देवलोक, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, आर्य गण, दस्यु-गण– सभी यह जानें – उन्हें यही बताया जाय कि पुरूरवा ने इन्द्र को विशिष्ट सोमरस में विष मिला कर दिया.... । क्या मेरी अस्वस्थता को ऐसे नहीं प्रस्तुत किया जा सकता ?

वज्र : **(चकित और प्रसन्न भाव से)** महान वृत्रहन्ता अजेय हैं । **(इन्द्र अपना हाथ बढ़ाता है । वज्र उसे पकड़कर उठाता है)**

इन्द्र : **(कुछ-कुछ डगमगाते हुए वज्र का हाथ पकड़कर चलता है)** .... ऐसा तो कभी नहीं हुआ ! **(मुस्कुराते हुए)** क्या यह कालकूट का प्रभाव नहीं है वज्र !

वज्र : बिल्कुल है प्रभु ! **(दोनों ठहाका लगाकर हंसते हैं)**

इन्द्र : **(वज्र की ओर घूमकर)** और उन देव-सैनिकों का क्या हुआ जो पवित्र अग्नियों के पहरे पर थे ?

वज्र : उन्हें यातना-गृह में डाल दिया है देवेन्द्र !

इन्द्र : **(भौहें सिकोड़ते हुए)** यातना-गृह में ? लेकिन कल तो अमरावती के राजमार्गों पर उनके शवों का प्रदर्शन होना है ! क्या तुम नहीं जानते कि पुरूरवा इन वीर देव-सैनिकों का हत्यारा है ?

वज्र : **(आतंकित होकर इन्द्र को देखता है)** जान गया देवाधिदेव !

इन्द्र : **(वज्र का हाथ पकड़कर चलता हुआ सिंहासन पर बैठ जाता है)** ....तुम्हें पता है.... आर्य-गणों के वे महान वीर सम्राट....जो हमारे अतिथि हैं.... हमारे विरुद्ध पुरूरवा को सन्धि-प्रस्ताव भेज रहे हैं । **(वज्र चौंकता है)** चौंको मत.... जो प्रस्ताव लेकर जाता है, वैदूर्य पर्वत के सिंह उनकी प्रतीक्षा करेंगे.... और उन कमनीय वेश्यागामियों से कह दो, पुरूरवा यज्ञों को बन्द कर रहा है । बताओ उन्हें.... कि उसके बाद उनके अन्तःपुर में केवल हिजड़े रह जायेंगे । उनकी महिषियां दस्युओं के संग रहना अधिक पसन्द करेंगी ।.... और वे स्वयं भिक्षा-पात्र लिए पुरों और विशों में तीर्थ करते फिरेंगे ।.... और मेरी ओर से यह भी कहो कि इन्द्र का यह दृढ़ विचार है कि वही ऐसे योद्धा हैं जो पुरूरवा को पराजित कर सकते हैं.... और यह उन्हीं का रण है ....

वज्र : और उन दोनों पुरोहितों का क्या करें प्रभु !....वे कभी भी विश्वासघात कर सकते हैं ।

इन्द्र : यह तो और भी अच्छा है । उन्हें प्रभूत धन दो और विश्वासघात में लगा दो ।

वज्र : क्या कह रहे हैं वृत्रहन्ता ?

इन्द्र : हां आं.... उन्हें विश्वासघात में लगा दो । देखो कि वे कहां छेद करते हैं ।.... और ये जो ऋषि-कुल हैं न.... इन्हें मेरा निर्देश दो कि वे पुरूरवा के बारे में प्रज्ञापित होने वाली घोषणाओं को लिपिबद्ध करके तत्काल मुझे दिखायें ।.... अन्यथा इनकी गौवें, गोधूम, रेशमी वस्त्र, सुन्दरियां और दास

भेजना बन्द कर दो । ये जो दिन-रात अपने आश्रमों को यज्ञ-धूम से सुवासित किये रहते हैं न .... कहो इनसे कि पुरूरवा इनकी यज्ञ-वेदियां तोड़ने चल चुका है.... । .... और कहो इन विदूषकों से ....कि कुढ़ने से वे वसिष्ठ नहीं हो जायेंगे.... । **(टहलने लगता है)**

वज्र : और देवर्षि नारद ?

इन्द्र : वह बुड्ढा .... खूसट ! उसकी बड़बड़ से तो मैं तंग आ गया हूं !

वज्र : और सनत्कुमार.... उनके बारे में क्या आदेश है ?

इन्द्र : उस नंगे को लाल रेशमी वस्त्रों का उपहार दो !

वज्र : वह पहनेगा नहीं प्रभु !

इन्द्र : पहनेगा.... देखना। **(रुककर)** उसे पुरूरवा के दरबार में जाना जो है।

वज्र : पुरूरवा के दरबार में .... ? क्यों ?

इन्द्र : यह जानना तुम्हारा काम नहीं है वज्र ! **(वज्र सकते में आ जाता है)** और देखो, पवित्र अग्नियों के बारे में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है ।....अग्नियां ले जाने से ही कोई उनका संवाहक नहीं बन जाता।

वज्र : **(जाने को उद्यत । जाते-जाते द्वार से लौटता है) ....** देवराज ! एक और बात पूछनी थी।

इन्द्र : **(विकृत लेकिन कारुणिक ढंग से हंसता है) ....**समझ गया मैं.... तुम मेरे सखा भी तो हो ! हां.... उर्वशी ? वह आयेगी। ....वह फिर बदल जायेगी। अप्सराएं सबकी होती हैं और किसी की नहीं होतीं। वे प्रेम नहीं करतीं । सिर्फ स्वाद बदलती हैं । आस्वाद-परिवर्तन एक अप्सरा का पहला और अन्तिम धर्म है। ....उसके स्वभाव में रचा हुआ है ।....वह ऊब जायेगी वज्र !.... और लौट आयेगी । **(वज्र के कन्धे पर हाथ रखते हुए)** तुम्हें लगता है, उर्वशी के प्रति यह मेरी विकृत आसक्ति बोल रही है ! कि मैं उसे सम्राटों, सेनापतियों को परोसता भी रहा हूं.... और उसके बिना रह भी नहीं सकता ! क्यों ? यही सोचते हो न तुम....? सो तो है ....सो तो है ही !

प्रहरी का प्रवेश ।

प्रहरी : देवराज की जय हो ! द्वार पर गन्धर्व विश्वावसु प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इन्द्र : **(कुछ आश्चर्य से)** विश्वावसु !... बुलाओ.... बुलाओ उसे। **(प्रहरी का प्रस्थान । फिर तुरन्त द्वार पर विश्वावसु प्रकट होता है । इन्द्र उसे एक बार देखकर मुस्कुराता है । विश्वावसु आतंकित-संभ्रमित-सा खड़ा रहता है । इन्द्र— वज्र से)** तो जाओ तुम। और यदि इसके बाद भी कोई हमारी घोषणा में सम्मिलित नहीं होता.... चाहे वह कोई भी हो.....सैनिक या सम्राट....ऋषि या देवर्षि....नंगड़े ब्रह्मवादी या दुहरे विश्वासघाती....मंत्र-द्रष्टा कवि या रंगशाला के सुखी निर्देशक.... चाहे वह कोई भी क्यों न हो— उसके साथ क्या व्यवहार होना चाहिए.... यह तो तुम जानते ही हो....

वज्र : जानता हूं देवाधिदेव ! **(झुकता है । प्रस्थान)**

इन्द्र : **(आश्चर्य का नाट्य करते हुए)....** अरे विश्वावसु ! तुम वहां क्यों खड़े हो ? आओ.... आओ ! कहां चले गये थे तुम ! कितना बेचैन था मैं तुम्हारे बिना ! आओ.... **(हाथ बढ़ाता है ! विश्वावसु एकाएक दौड़कर इन्द्र के चरणों में गिर जाता है और जोर-जोर से रोने लगता है । इन्द्र उसे पारखी निगाहों से देखता है)** उठो तो....

विश्वावसु : **(इन्द्र के घुटनों पर अपना चेहरा रगड़ते हुए)** नहीं.... नहीं देवराज ! मैं इस योग्य नहीं हूं। मैं एक अधम पापात्मा हूं।

इन्द्र : **(कोमलता का नाट्य करते हुए)** कहां चले गये थे तुम ? जानते हो....तुम्हारे बिना एक पल को भी मेरा जी नहीं लगता था ! **(विश्वावसु अपना आंसू भरा चेहरा उठा कर जैसे अविश्वास-भाव से इन्द्र को देखता है । इन्द्र उसका चेहरा अपने हाथों में लेते हुए)....** उर्वशी को लाओगे न ?

विश्वावसु : **(विगलित होते हुए)** लाऊंगा देवाधिदेव ! अवश्य लाऊंगा .... । उसी के साथ उसके मेमनों को भी उठा लाऊंगा। **(पुनः पैरों पर गिर पड़ता है)**

इन्द्र : **(झुककर उठाते हुए)** विश्वावसु ! मुझे कितनी प्यास लगी है !
विश्वावसु एकाएक फुर्ती से उठता है । अपना कमरबन्द कसता है । अपने केश ठीक करता है । जल्दी-जल्दी अपने आंसू पोंछता है । फिर प्रकोष्ठ के कोने में जाकर सोमरस से चषक भरता है । एक बार घुंघरू छनकाते हुए, स्त्रैण-भाव से मुस्कुराते हुए सोमरस का चषक इन्द्र को पकड़ाता है। अन्धकार ।



दृश्य-चार

मंच पर धुंधला प्रकाश । सन्नाटा । क्षण भर बाद चारों मशालधारी देव-सैनिकों के साथ सेनापति वज्र का प्रवेश । फिर दायें विंग से तीनों मनु-पुत्रों—पृषध्र, नरिष्यन्त और नाभाग तथा बायें विंग से तीनों संन्यासियों— नारद, सनत्कुमार और भरत मुनि का प्रवेश । फिर उसी क्रम से दायें विंग से दोनों पुरोहितों— कश्यप और विभावक तथा बायें विंग से दोनों ऋषियों का प्रवेश । अन्त में एक ओर से गन्धर्वराज चित्रसेन और दूसरी ओर से विश्वावसु का प्रवेश । सभी एक विशिष्ट अर्द्धचन्द्राकार संयोजन में अपना स्थान ग्रहण करते हैं— कुछ इस तरह कि दर्शक सभी को अलग-अलग और एक साथ देख सकें । वज्र अर्द्धगोलाई के बीच में है । एकाएक सभी बांहें उठाकर पुरूरवा पर लगाये गये आरोपों की समवेत-स्वर में उद्घोषणा करते हैं । प्रत्येक आरोप पर उनकी बांहें समवेत रूप में ऊपर उठती-गिरती हैं । और उतने ही यांत्रिक ढंग से प्रत्येक घोषणा के बाद नगाड़े की 'कड़कड़ धुम्म कड़कड़ धुम्म' का भयप्रद संगीत बजता हुआ उद्घोषणा को संचालित करता है ।

समवेत स्वर : पुरूरवा यज्ञ-विध्वंसक है ।
पुरूरवा पवित्र अग्नियों का विखण्डक है ।
पुरूरवा देव-सैनिकों का निर्मम हत्यारा है ।
पुरूरवा वीर्योन्मत्त है । पागल है ।

उसने उर्वशी का बलपूर्वक हरण किया ।
उसने देवाधिदेव इन्द्र को कालकूट विष दिया ।

पुरूरवा आर्यों का शत्रु है ।
पुरूरवा ब्राह्मणों से विग्रह करता है ।
पुरूरवा पवित्र आश्रमों को जलाता है ।
पुरूरवा मंत्रों को समुद्र में डुबाता है ।
पुरूरवा ज्ञान का विनाशक है ।

उसने गन्धमादन के सिंहों का निर्लज्ज आखेट किया ।
उसने नदियों के प्रवाह को बांध दिया ।
उसने अच्छोद सरोवर के हंसों को उड़ा दिया ।
उसने वनों को विकट अग्नियों से दहका दिया ।

पुरूरवा लुटेरा है....यज्ञ विध्वंसक है.... अन्धा है ।
पुरूरवा निर्मम हत्यारा है.... वीर्योन्मत्त है.... पागल है ।
पुरूरवा चन्द्रवंशी चाण्डाल है ।

विंग से चारों काली आकृतियों का प्रवेश । चारों मंच के अग्रभाग में अलग से अर्द्धचन्द्राकार खड़ी हो जाती हैं । प्रकाश-परिवर्तन । मद्धिम । धुंधला और पीला । जैसे एक भयावना प्रेत-लोक । उद्घोषणाएं बन्द हो जाने के बाद भी नगाड़े के भयप्रद संगीत के साथ कठपुतलों की तरह समूह-बद्ध बाहें कुछ देर उठती-गिरती रहती हैं । धीरे-धीरे मंच पर अन्धकार फैलता है ।



दृश्य-पांच

युद्ध शिविर । पर्दा खुलने पर मंच सूना । फिर पुरूरवा का सैनिक वेष में प्रवेश । साथ में सेनापति सूर्यबाहु । सूर्यबाहु पीछे जाकर पुरूरवा का लौह-कवच खोलता है । पुरूरवा अपना शिरस्त्राण स्वयं उतारता है और सूर्यबाहु को पकड़ाता है । कवच उतरते ही पुरूरवा अपनी भुजाओं को बारी-बारी से झटकता हुआ निहारता है ।

पुरूरवा : वेग से भागते हुए रथ के नीचे जब किसी घायल सैनिक की मरणान्तक कराह सुन पड़ती है तो मेरा सारथी झेंपता हुआ -सा मेरी ओर देखता है.... जैसे मैं प्रसन्न होऊंगा !.... प्रसन्न तो मैं नहीं होता लेकिन मरता हुआ सैनिक ओझल हो जाता है और युद्ध का तर्क चढ़ बैठता है ।.... युद्ध, जो हमारे लिए एक सिद्धान्त है ! **(सूर्यबाहु की ओर घूमकर)** देखो, तुम लोहित के दाहिने किनारे से होते हुए वैदूर्य पर्वत की ओर बढ़ोगे । वहां से गन्धर्व प्रदेशों की ओर । मैं त्रिगर्त से होता हुआ सारस्वत की ओर । हम सिन्धु और शतद्रु के बीच कहीं मिलेंगे । फिर हम शत्रुओं को घेरकर सदा के लिए विनष्ट कर देंगे । हम इस पावन धरती को हत्या, लूटपाट, आतंक और भय से मुक्त कर देंगे .... । फिर हम विपाशा के किनारे गुरुदेव के लिए एक आश्रम का निर्माण करेंगे.... । **(रुककर)** हम सागर-तट पर कब पहुंचेंगे ? क्यों सेनापति !

सूर्यबाहु : कल संध्या तक ।

पुरूरवा : कल हम लोग जल के अनन्त कोषागार से मिलेंगे ।.... सागर की विप्लवी हुंकार सुनेंगे !

सूर्यबाहु : कल हमारी आसमुद्रान्त जय-यात्रा पूरी होगी ! **(बाहर कोलाहल)**

पुरूरवा : यह कैसा कोलाहल है ?

सूर्यबाहु : बाहर शिविरों में सैनिकों का हल्ला-गुल्ला है ! जिसका जैसे मन हो रहा है, गा-बजा रहा है !

पुरूरवा : और जनपदों में, पुरों में, विशों में– क्या सोचते हैं लोग मेरे बारे में ?

सूर्यबाहु : तुरन्त विश्वास करना कठिन है सम्राट ! पहली बार उन्हें अग्नियां प्राप्त हुई हैं ! अपने को पहचानना इतना आसान नहीं है राजन् !.... फिर जिस तरह वातावरण स्वच्छ हो रहा है.... जिस तरह वह विषाक्त, दमघोंटू, सुवासित यज्ञ-धूम छंट रहा है, लोगों की आंखें आश्चर्य से कडुवा रही हैं ।

पुरूरवा : अभी तो हमने आरम्भ किया है सेनापति !....अभी तो आंखें कडुवायेंगी ही....

सूर्यबाहु : लोगों की आंखों में कभी-कभी एक भय भी झलकता है !.... एक शंका, एक अविश्वास !

पुरूरवा : **(घूमकर । कठोरता से)** लोगों की आंखों में....? या तुम्हारी आंखों में सेनापति ? अपने भय को लोगों की आंखों में आरोपित मत करो।

सूर्यबाहु : **(सकपकाया हुआ)** हो सकता है, ऐसा ही हो।

पुरूरवा : हो सकता है नहीं....ऐसा ही है । और जानते हो क्यों ? मेरी सुरक्षा की चिन्ता तुम्हें भयभीत करती है और तुम उसे लोगों की आंखों में देखने लगते हो।

सूर्यबाहु : **(विगलित)** वह तो है ही सम्राट !.... वह तो बचपन से ही है !

पुरूरवा : लेकिन अब मैं बच्चा नहीं हूं सेनापति ! कि तुम मुझे विपाशा में तैरते हुए देखकर डर जाओगे !.... यह एक नयी गंगा है । और मुझे इसमें तैरना आता है !

सूर्यबाहु : लेकिन महर्षि ?.... उन्हें आप मना कर दीजिए । वह सेना की अग्रिम पंक्तियों से भी आगे रहते हैं । वे शत्रु-प्रदेश में भी चले जाते हैं और लोगों को इस युद्ध का अर्थ समझाने लगते हैं । और बार-बार हमें उनकी सुरक्षा के लिए सेना भेजनी पड़ती है।

पुरूरवा : महर्षि ।.... जितनी बार मैं उन्हें समझने का प्रयत्न करता हूं, विफल हो जाता हूं । वे मेरी समझ के दो टुकड़े कर देते हैं । ज्योंहि मैं उनकी बातों का अर्थ पकड़ता हूं, वे आगे बढ़ जाते हैं! लेकिन मैं उन्हें रोकूंगा । उन्हें युद्ध-शिविर से बाहर प्रतिष्ठान जाना ही होगा । उनकी निर्भयता मुझे हैरान करती है....

सूर्यबाहु : यज्ञ-वेदियों के बारे में क्या आदेश है सम्राट !

पुरूरवा : आदेश ? अभी तक आदेश नहीं समझ में आया आपके ! और युद्ध-परिषद में क्या निर्णय हुआ था ? फिर मेरे आदेश की क्या बात है ? यज्ञ-वेदियों को ध्वस्त कर दो.... उनके चिन्ह तक मिटा दो । नहीं, कोई पागल पुरोहित फिर उनका दृष्टान्त प्रस्तुत कर सकता है । उनके इर्द-गिर्द एक आलोक-मण्डल का निर्माण कर सकता है.... शब्द-जाल फैलाकर जनता को ठगी के लिए मुग्ध कर सकता है....

सूर्यबाहु : महर्षि कहते हैं, यज्ञ-वेदियां विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुन्दर कला के नमूने हैं । उन्हें वैसे ही छोड़ दिया जाय।

पुरूरवा : **(आवेश में)** सुन्दर कला के नमूने ! जहां आदमी की हड्डियों का दोहन होता है.... जहां आग की लपटों में मौत लपकती है.... ! महर्षि क्या युद्ध-परिषद से ऊपर हैं ! आखिर वे चाहते क्या हैं । सर्वत्र असहमति.... सर्वत्र असंतोष....

सूर्यबाहु : महर्षि युद्ध को लेकर बेचैन हैं।

पुरूरवा : लेकिन क्यों ? क्यों ? जबकि मैं जगह-जगह देखता हूं गार्हपत्य अग्नि का आलोक । चूल्हे पर सिंकती हुई रोटियां और उबलकर गिरे हुए दूध की जली हुई गन्ध । माताओं के दमकते हुए मुख और ललाई हुई आंखें । और मैं इन्हें झुठला नहीं सकता । उनकी गौवें उनके द्वार पर खूंटे से बंधी हैं । कोई उन्हें बलपूर्वक खोलकर नहीं ले जाता । और उनका धान्य उनके

पास है ।.... सभी कुछ कितना सुखद है ! कितना अनहोना .... और कितना उल्लासमय !

सूर्यबाहु : क्षमा करें सम्राट, मुझे बार-बार लगता है.... ऐसे उल्लास की उन्हें आदत नहीं है ।

पुरूरवा : आदतें उनसे छीन ली गयी हैं सेनापति ! आदतें लौट आयेंगी । जब वे अपने को पहचानना प्रारम्भ करेंगे । केवल वर्तमान में मत रहो.... आगे भी जाओ ।.... और आदतें तो मुझे भी नहीं हैं । मैं भी उल्लास खोजता हूं किन्तु वह मुझमें एक अनचाहा तनाव पैदा करता है । जब मैं देवि उर्वशी के साथ गन्धमादन पर था– ! ओह, जीवन इतना मनोहारी है.... इसके पहले मैं कहां जानता था ! .... किन्तु मैं पूरी तरह डूब नहीं पाया । मैं मुक्त नहीं हो पाया । मेरे सामने मेरा लक्ष्य इतना स्पष्ट है.... लेकिन मुझे भी अस्तित्व के रहस्यमय अंधेरे कभी-कभी घेरते हैं । मैं वचनबद्ध हूं.... मैं अपने गणों के साथ छल नहीं कर सकता । इसीलिए मैं बाहर आता हूं.... बार-बार इन कन्दराओं से, वनों की सांय-सांय से.... बाहर आता हूं ।.... सच तो यह है कि मुझे वहीं विश्राम मिलता है जहां मैं 'विशिष्ट' नहीं हूं। जैसे कि तुम्हारे पास । लेकिन करूं क्या ! इस युद्ध के दौरान मेरा पौरुषवान होना.... मेरा 'विशिष्ट' होते चले जाना सबसे बड़ी दुर्घटना है। वैसे, देखो तो अकेले मेरा पौरुष कर ही क्या सकता है ।

सूर्यबाहु : आप तो मुक्तिदाता हैं राजर्षि !

पुरूरवा : नहीं....नहीं सेनापति ! मुक्तिदाता तो वही जन हैं, जिनमें मुक्ति की सर्वग्रासी इच्छा है । यह मेरा धनुष ! और यह मेरा खड्ग ! **(स्पर्श करता है)** इनका योगदान कहने भर को है । और मेरी ये भुजाएं !.... **(निहारता है)** जो युद्ध में यन्त्रवत् उठती हैं, प्रहार करती हैं.... प्रत्यंचा को आकर्ण खींचती हैं.... ! **(भुजाओं को झटकता है)**

सूर्यबाहु : इन्हीं के बल पर तो कल हम सागर की विप्लवी हुंकार सुनेंगे ।

पुरूरवा : **(टहलते हुए । जैसे अपने-आप से)**लोगों के बीच से मथा जाकर एक उद्देश्य तुम्हारे सामने प्रकट होता है । तुम वह उद्देश्य लोगों के सामने रख देते हो ! और देखो, ... वे इस उद्देश्य से तुम्हें जकड़ देते हैं । फिर वह उद्देश्य तुम्हारे लिए सुमेरु की जड़ हो जाता है ; सिन्धु का अनवरत कोलाहल हो जाता है ! उस उत्तरदायित्व, उस विचार.... उस स्फटिक निमर्लता के बिना तुम जी नहीं सकते !... और उसके साथ-साथ बंधे हुए तुम सहज और साधारण नहीं रह जाते ! काल के अनन्त अन्तराल में इतने 'विशिष्ट' कि जैसे प्रातः-कालीन किरणों में उलझी हुई एक महीन सी धुंध.... बस ! **(घूमकर)** सेनापति ! यही है महानता और यही है अमरत्व .... !

सूर्यबाहु : मैं तो मात्र एक सैनिक हूं राजर्षि ! मुझे इतनी बड़ी-बड़ी बातें समझ में नहीं आतीं । मुझे तो एक विशेष समाचार देना है आपको !

पुरूरवा : **(ध्यान से देखने लगता है)**.... विशेष समाचार ?

सूर्यबाहु : हमारे गुप्तचरों ने सूचना भेजी है.... ।
पुरूरवा : रुक क्यों गये ?
सूर्यबाहु : कुछ दिनों पहले सम्राट पृषध्र अपने युद्ध-शिविर में मारे गये ।
पुरूरवा : युद्ध-शिविर में ?
सूर्यबाहु : उनके छोटे भाई सम्राट नरिष्यन्त ने सोते हुए उनकी हत्या कर दी ।
पुरूरवा : यह तो मनु-पुत्रों की शाश्वत प्रकृति है ! यह तो होना ही था ।
सूर्यबाहु : लेकिन उस हत्या को सम्राट पुरूरवा के सिर मढ़कर प्रचारित किया जा रहा है ।
पुरूरवा : **(चौंकता है)** मेरे ? लेकिन मैं तो वहां था भी नहीं.... ।
सूर्यबाहु : उससे क्या होता है । वे कह रहे हैं कि रात के अंधेरे में पुरूरवा छिपकर आया और महाराज पृषध्र की गर्दन उतार कर ले गया ।
पुरूरवा : **(घृणापूर्वक)** ये गर्हित चालें अब बेकार हैं सेनापति !.... हां, उस गुप्तचर से यह सूचना अवश्य भिजवा दो कि मैं.... उस हत्यारे .... उस अधम नरिष्यन्त का सिर उतारकर निश्चय ही गुरुदेव को अर्पित करूंगा । और मैं छिपकर नहीं आऊंगा ! मैं गरजता-हहराता हुआ आऊंगा.... मैं दिन-दोपहर की तरह आऊंगा, जब परछांइयां भी पैरों तले होती हैं !
प्रहरी का प्रवेश ।
प्रहरी : सम्राट की जय हो । द्वार पर गुप्तचर प्रतीक्षा कर रहा है ।
सूर्यबाहु : आने दो । **(प्रहरी का प्रस्थान । गुप्तचर का प्रवेश । एक लिपटा हुआ पत्र सेनापति को देता है । सूर्यबाहु उसे खोलकर पढ़ता है । चिन्ता-मग्न हो जाता है । गुप्तचर से)** और कुछ ?
गुप्तचर : नहीं सेनापति !
सूर्यबाहु : ठीक है, जाओ । **(गुप्तचर का सिर नवा कर प्रस्थान)**
पुरूरवा : क्या है सेनापति ? **(सूर्यबाहु पत्र पुरूरवा को देता है । पुरूरवा उसे पढ़ता है । फिर उत्तेजना में टहलने लगता है । एकाएक)** .... धूर्त.... मक्कार.... पापात्मा.... और ये सब देवर्षि हैं ! बाल ब्रह्मचारी हैं, मुनि हैं — ये सब ? और गुरुदेव.... इनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते ! और ये पुरूरवा को यज्ञ-विध्वंसक, हत्यारा, अग्नियों का विखण्डक और चोर और चाण्डाल होने की उद्‍घोषणा में इन्द्र और ब्राह्मणों और क्षत्रियों और गन्धर्वों के साथ सम्मिलित होते हैं !.... मेरे ऊपर इस तरह के आरोप ? — गन्धमादन के सिंहों और अच्छोद सरोवर के हंसों के बारे में ? मैं, जो सिंह-शावकों से खेलता हूं ; मैं, जो अच्छोद सरोवर के हंसों को तैर कर चारा चुगाता हूं ; मैं, जो फूलों को नहलाता हूं, पत्तियों को अपने उत्तरीय से पोंछकर साफ करता हूं....। मेरी अन्तःप्रकृति को ही कलंकित करने का प्रयत्न ! **(जाकर आसन पर बैठ जाता है । सूर्यबाहु किंकर्तव्यविमूढ़ उसका मुंह ताकता है । फिर एकाएक पुरूरवा उठकर खड़ा हो जाता है)** .... मुझे कवच पहनाओ सेनापति ! **(सूर्यबाहु कवच पहनाता है । पुरूरवा अपना शिरस्त्राण स्वयं उठाकर पहनता है । कमर से**

लटकती हुई छोटी सी तलवार को म्यान से निकालकर, एक बार उसकी धार उंगली से छूकर परखता है । फिर म्यान में डालता है । इस बीच सूर्यबाहु उसकी पीठ पर तरकस कस रहा है । पुरूरवा धनुष उठाकर, प्रत्यंचा को आकर्ण खींचकर तानता है । फिर उसे कन्धे पर लटका लेता है । सूर्यबाहु की ओर घूमकर) सेनाओं को मेरा आदेश है.... आज से यह युद्ध रात के अंधेरे में भी चलेगा । कोई विश्राम नहीं.... अन्त तक । और यह ! **(पैरों से भूमि पर पड़ हुए पत्र की ओर संकेत करता है)....** कहां हैं गुरुदेव ? उन्हें ले जाकर दे दो.... आर्यों, देवताओं और ऋषिकुलों और गन्धर्वों और देवर्षियों, मुनियों और बाल ब्रह्मचारियों द्वारा रची हुई यह सुगन्धित दुरभिसन्धि । **(सूर्यबाहु पत्र उठाकर लपेटता है और चलने को उद्यत होता है)** .... और मेरे सारथी से कहो, रथ को द्वार पर तुरन्त उपस्थित करे.... ।

सूर्यबाहु का प्रस्थान । पुरूरवा जैसे प्रतीक्षा करता हुआ टहल रहा है । वह बार-बार अपनी भुजाओं को झटकता हुआ निहारता है । तभी इला का प्रवेश । वह पुरूरवा को देखकर एक बार मुस्कुराती है । फिर उसे अपने में तल्लीन पाकर ठिठक जाती है । उसकी आहट से पुरूरवा सचेत होता है और अपनी भुजाओं को निहारना बन्द कर देता है । इला उसके पास आती है । लेकिन पुरूरवा बिना कुछ बोले यन्त्रवत् टहलता रहता है ।

इला : **(उसके कवच और शिरस्त्राण की ओर संकेत करती हुई)** यह रण-क्षेत्र तो, शायद, नहीं है सम्राट !

पुरुरवा : **(शून्य दृष्टि से इला को देखता है)** रण-क्षेत्र कहां नहीं है मां ?

इला : इसे उतार क्यों नहीं देते ?

पुरूरवा : मैंने अभी-अभी पुनः धारण किया है ।

इला : अभी ? इस समय.... आधी रात को ?

पुरूरवा : आधी रात को तो हम लोगों ने कितनी बार प्रस्थान किया है ।

इला : वे सब पुरानी बातें हैं ।

पुरूरवा : बातें पुरानी कहां होती हैं !

इला : क्या गन्धमादन जाओगे ?

पुरूरवा : **(अपने कवच की ओर संकेत करते हुए)** गन्धमादन ? और इस वेष में ? **(टहलने लगता है)** हां.... लगता है, अब गन्धमादन भी इसी वेष में जाना पड़ेगा । इसी तरह कसे हुए.... आकर्ण धनुष ताने हुए !

इला : क्यों ? क्या शत्रु गन्धमादन की ओर बढ़ रहे हैं ?

पुरूरवा : **(गर्वपूर्वक)** उसकी दहकती हरियाली में वे झुलस जायेंगे ।.... वहां पुरूरवा जो गया था ।

इला : **(दुलार से)** तुम कुछ दिनों के लिए गन्धमादन फिर चले जाओ ।

पुरूरवा : मेरे पास समय नहीं है ! **(पास जाकर)** मेरे पास अब तुम्हारे लिए भी समय नहीं है ....

इला : तुम नहीं जानते , तुम्हारा सारा समय तो मेरे ही लिए है।

पुरूरवा : **(ध्यान से इला को देखता है)** तुम इतनी कठिन कैसे हो मां !

इला : अच्छा बताओ, उर्वशी से कब मिलोगे ?

पुरूरवा : मां ! मुझे अभी-अभी जाना है।

इला : साम्राज्ञी दिन-रात तुम्हारी बाट जोहती रहती हैं।

पुरूरवा : **(खीझते हुए)**.... तुम क्यों नहीं समझतीं मां। देवि उर्वशी की मुक्ति इस युद्ध में रची हुई है। यदि मैं युद्ध हारता हूं तो उन्हें भी खो दूंगा। .... तुम नहीं जानतीं मां ! तुम मेरी दाहिनी पसली में बैठी हो तो वे मेरी बांयीं पसली में बैठी हैं....।

इला : तुमसे एक बात कहनी है..... **(खांसती है)**

पुरूरवा : **(घूमकर पास आता है)** मुझे वैसा ही रहने दो मां ! **(इला फिर खांसती है। पुरूरवा उसके कन्धों पर हाथ रखता है)** .... वैसा ही, जैसा कि मैं था। जैसा कि मैं हूं।

इला : साम्राज्ञी.... गर्भवती हैं !

पुरूरवा : **(एकाएक इला के कन्धों पर से अपने दोनों हाथ हवा में ऊपर उठा लेता है। अविश्वस्त, आश्चर्य-चकित, डरा हुआ-सा। दो-चार कदम तेज चलता है। फिर लौटकर इला के पास आता है और एकाएक उसका चेहरा अपने हाथों में लेकर भय, आतंक से आंखें फाड़कर घूरने लगता है। फिर जोर से चीखता है)** नहीं.... नहीं ई....

प्रहरी का प्रवेश ।

प्रहरी : सम्राट की जय हो ! द्वार पर सारथी उपस्थित है।

पुरूरवा इला को छोड़कर प्रहरी के साथ ही बाहर निकल जाता है। इला उसे जाते हुई देखती रहती है। अचानक एक गहन रुदन उसे आक्रान्त कर लेता है। आवेग और आकुलता में वह भूमि पर बैठ जाती है ।.... तभी उर्वशी का प्रवेश। वह कुछ संभ्रमित सी इधर-उधर देखती है। फिर इला पर उसकी दृष्टि पड़ती है। कुछ क्षणों की दुविधा के बाद पास आकर।

उर्वशी : क्या हुआ मां ? आप इस तरह .... **(इला अपना अश्रु-प्लावित चेहरा उठाती है)** क्या हुआ.... ?

इला : कुछ नहीं ! **(उठते हुए उर्वशी का हाथ पकड़ती है)**— आओ, मेरे पास बैठो। **(दोनों बैठती हैं)**

उर्वशी : क्या सम्राट से कोई बात हो गयी ?

इला : नहीं तो.... कुछ भी नहीं। **(रुककर)** अच्छा बताओ साम्राज्ञी ! मनुष्य के मन में सबसे बड़ा आतंक क्या हो सकता है ?

उर्वशी : मां ! मैंने सोचना बन्द कर दिया है.... मैं तो बस अनन्त आनन्द में डूबी हुई हूं !

इला : अच्छा है, तुम न जानो !

उर्वशी : मां ! मैं परिणाम नहीं जानना चाहती !

इला : लेकिन वहां तक पहुंचना तो है ही !

उर्वशी : क्या सम्राट चले गये ?

इला : हां, लेकिन कहां, यह मैं नहीं जानती । **(रुककर)** मैंने सम्राट से कहा था।

उर्वशी : **(हंसती हुई)** मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था मां !

इला : सम्राट के पास समय नहीं है– हमारे लिए ।

उर्वशी : यह कितनी बड़ी बात है ! मां ! इसे केवल मैं.... केवल मैं ही समझ सकती हूं । अक्सर वे रातों को मेरे कक्ष में टहलते रहते हैं । उनकी उंगलियां हवा में उठती-गिरती रहती हैं । उनके होंठ हिलते रहते हैं । प्रहर बीत जाते हैं....और उन्हें इसका आभास तक नहीं होता कि मैं वहीं हूं ! और मैं मुग्ध.... तल्लीन, उन्हें निहारती रहती हूं । उनकी यह सदाबहार निर्लिप्तता.... उनका यह असह्य वैराग्य.... यही तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी धरोहर है ! यह उपेक्षा या उदासीनता या अन्यमनस्कता नहीं है । और जो मैं कहती हूं न .... इसे मैं ही समझ सकती हूं ! वही स्त्री इसे समझेगी .... जाने दीजिए, आप तो संन्यासिनी हैं मां ! आप इसे कैसे जानेंगी ! इसे उर्वशियां ही समझ सकती हैं । मां मैं अनन्त आनन्द में डूबी हुई हूं.... मैं मुक्त हूं !

इला : **(उर्वशी का चेहरा अपने हाथों में लेते हुए)** तुम दुःख और आनन्द– दोनों में मुझसे बड़ी हो !.... मेरे पास तो केवल तनाव.... केवल दुर्घटनाएं हैं....

उर्वशी : आपने तो रचा है.... आपने तो सृजन किया है ।

इला : सृजन ?.... सृजन तो तुम करोगी ।

उर्वशी : अच्छा मां ! आपने कभी सोचा है ? **(इला उर्वशी को देखती है)**.... सचमुच संन्यस्त कौन है ? महर्षि वसिष्ठ या राजर्षि पुरूरवा ?

इला : दोनों में से कोई भी नहीं ।

उर्वशी : **(आश्चर्य से)** ऐसा क्यों कहती हैं मां !

इला : इसलिए कि एक को मनु से छुटकारा नहीं है और दूसरे को इला से ।.... दोनों ही अपने उद्देश्यों के प्रति निर्भ्रान्त रूप से समर्पित नहीं हैं ।

उर्वशी : कैसे हो सकता है ! अपने प्रिय जनों से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है ।

इला : प्रिय जनों की बात नहीं है साम्राज्ञी ! यह स्मृति का झंझावात है, जो प्रत्येक पल आपकी हरियाली को झंझोड़ता रहता है ।.... उससे मुक्त नहीं हुए तो वर्तमान भी सनसनाता रहता है और भविष्य भी धूमिल हो जाता है ! **(उर्वशी की ओर घूमकर–दयनीय भाव से)....** पहले मैं नहीं चाहती थी !.... और महर्षि के साथ तो कुछ करना भी सम्भव नहीं ।

किन्तु पुरूरवा को ?.... उसे अतीत से उबार लो.... उसे स्मृति-रहित कर दो साम्राज्ञी !.... **(एकाएक दोनों लिपट जाती हैं)**

सेनापति सूर्यबाहु का हड़बड़ाते हुए प्रवेश । दोनों स्त्रियों को इस मुद्रा में देखकर रुक जाता है । अपना शिरस्त्राण सम्मान में उतारता है ।

सूर्यबाहु : माता ! **(इला घूमकर देखती है)** मेरा प्रणाम ग्रहण करें !

इला : **(कुछ संभ्रमित)** कैसे हो सेनापति ?

सूर्यबाहु : मुझे क्षमा करें माता !

इला : **(प्रकृतस्थ होती हुई)** नहीं, कोई बात नहीं । **(हंसने का प्रयत्न करती है)** आज सभी लोग, इस आधी रात को भी अपने कवच क्यों नहीं उतार रहे हैं ?

सूर्यबाहु : सम्राट का आदेश है माता ! **(इधर-उधर देखता है)** क्या वे चले गये ?

इला : यहां से तो गये ।

सूर्यबाहु : तब तो अनर्थ हो गया ! महर्षि अभी आ रहे हैं— उन्हें रोकने के लिए ।

इला : रोकने के लिए ? किन्तु क्यों ? **(सूर्यबाहु चुप रहता है)** देखिये सेनापति ! मैं युद्ध-शिविर में हूं.... किसलिए ? और आप लोग मुझे कुछ भी बताते नहीं । न सम्राट, न महर्षि, न आप ही । इसलिए कि मैं एक स्त्री हूं ! जबकि आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं कभी भी शस्त्र धारण कर सकती हूं.... **(खांसती है)** आप लोग क्या समझते हैं, मैं बूढ़ी.... अशक्त हो गयी हूं ?

सूर्यबाहु : क्षमा करें माता ! मैं तो आपका अनुचर हूं । लेकिन मेरे पास समय नहीं है । महर्षि का आदेश है । मुझे किसी भी तरह सम्राट को रोकना है ।**(सिर नवाकर तेजी से प्रस्थान)**

इला : **(पीड़ित)** हमारे लिए किसी के पास भी समय नहीं है । न सम्राट के पास, न सेनापति के पास, न महर्षि के पास । सभी के अपने-अपने रण-क्षेत्र हैं !

वसिष्ठ का प्रवेश । उर्वशी उठकर प्रणाम करती है । वसिष्ठ आशीर्वाद का हाथ उठाते हैं ।

वसिष्ठ : **(हंसते हुए)** किन्तु मेरा तो कोई रण-क्षेत्र नहीं है ।.... मेरे पास तो समय ही समय है ! **(इला उन्हें घूमकर देखती है)....** कैसी हैं आप ?

इला : **(शिकायती स्वर में)** यह भी जानने का समय नहीं है आपके पास ।

वसिष्ठ : मैं जानता हूं, आप ठीक होंगी । मैं आपका अन्तर्चित्त पहचानता हूं ।

इला : **(गर्व से वसिष्ठ को निहारती है)** यही तो आश्चर्य है । और इसीलिए आप विचलित नहीं होते ।

वसिष्ठ : **(कुछ अन्तर्मुख भाव से)** नहीं होता था । लेकिन अब ? होता हूं । बल्कि अब हूं । पूरी तरह विचलित हूं ।

इला : **(हंसती है)** विचलित.... और इतने शान्त भाव से ? मुझे सांत्वना मत दीजिए आचार्य !

वसिष्ठ : मैं सांत्वना नहीं दे रहा ।.... आप जानती हैं, इन दिनों में शिविर में बहुधा नहीं रहता । मैं पुरों में, विशों में, जनपदों में, सेना की अग्रिम पंक्तियों के साथ भटकता रहता हूं । कहीं घायलों के बीच होता हूं । कहीं बन्दियों को ढाढ़स बंधाता रहता हूं । कहीं ऋषियों, पूज्य ब्राह्मणों और पुरोहितों को समझाता रहता हूं कि यज्ञ एक जन-विरोधी कार्य है । कहीं यज्ञ के नाम पर बलात् एकत्रित सामग्री को पुनः गणों में वितरित करता हूं । सम्भवतः उन्हें विश्वास नहीं होता ।.... क्या उनमें मुक्त होने की घनी आकांक्षा नहीं है ? या हमीं अपनी जनता को पूरी तरह नहीं जानते ? ....क्यों वह हमें अपरिचित आंखों से देखती है ? कभी-कभी लगता है कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं , उसमें लोगों की सहमति नहीं है.... केवल एक विवश स्वीकार-भाव है । दोनों में जो अन्तर है, वह मुझे उलझन में डालता है, मुझे अशान्त करता है, मुझे विचलित करता है ! **(रुककर)**.... और राजर्षि अलग से खिन्न हैं कि मैं लगातार अपने को असुरक्षा में डालता रहता हूं....

उर्वशी : सम्राट की यह चिन्ता स्वाभाविक है गुरुदेव !

वसिष्ठ : राजर्षि.... क्या चले गये ?

इला : आश्चर्य है.... सब लोग एक ही बात पूछ रहे हैं !

वसिष्ठ : इसलिए कि ब्रह्मचारी सनत्कुमार इन्द्र का संदेश लेकर आये हैं । दूसरे, यह बताइए.... क्या प्रतिशोध ही मेरा लक्ष्य है ?

इला : यह कौन कहता है ?

वसिष्ठ : आपको याद है न ! कभी नादानी में युवराज नरिष्यन्त ने मेरे हाथ-पांव बांधकर विपाशा में डाल दिये थे । नदी-मां की कृपा से मैं बच भी गया । किन्तु राजर्षि.... उस कहानी को, जो मैंने उन्हें गोदी उठाये-उठाये सुनाई थी, अभी तक याद रखे हुए हैं ....।

उर्वशी : आप सन्त हैं.... भूल सकते हैं । लेकिन राजर्षि.... ? अगर वह भूल जांय तो इससे बड़ा अधर्म क्या होगा ?

वसिष्ठ : न भूलें, लेकिन याद कैसे रखें– यह तो जानना चाहिए ।

इला : मेरी तो समझ में नहीं आ रहा कि हुआ क्या !

वसिष्ठ : अनर्थ.... अनाचार ! और क्या !... आज यदि सेनापति ने उन्हें रोक नहीं लिया तो आपके भाई का सिर आपकी गोद में होगा ।

इला : **(शान्त भाव से)** मैं विचलित तो नहीं हुई, जैसा कि शायद, आप सोचते होंगे । मुझे यह अनर्थ और अनाचार भी नहीं लगा, जैसा कि आप कह रहे हैं । **(वसिष्ठ चकित । इला, उर्वशी से)** साम्राज्ञी ! मैं अभी-अभी क्या कह रही थी ! अब देख लो, मनु इनके अस्तित्व में किस तरह रसे-बसे हैं ! **(वसिष्ठ से)** बताइए, युद्ध-परिषद में किसने यह घोषणा की थी कि सभी हिंसा अनैतिक नहीं होती ? कि सभी हत्याएं, हत्याएं नहीं होतीं ? आप ही ने तो ! और अब ? इस तरह से प्रशान्त अहिंसा की बात करेंगे आचार्य ! तो रहने के लिए कन्दराएं भी नहीं मिलेंगी !... आपका भेद खुल चुका है ।

वसिष्ठ : यही तो बात है ! मैं मनुष्यों के लिए न्याय भी चाहता हूं और रक्तपात भी नहीं चाहता !

इला : ऐसा नहीं होगा !.... आप देखते हैं और जानते हैं । फिर आप एक ऐसी आशा लिए क्यों बैठे हैं जिसका अस्तित्व ही नहीं है ?

वसिष्ठ : लेकिन ऐसी आशा रखना तो अधर्म नहीं है ! **(रुककर)**.... वहीं तो मैं द्रष्टा हूं.... वहीं तो मैं कवि हूं, जहां मैं मनुष्य के निर्बाध अस्तित्व, उसके उदात्ततम मानसिक विकास की आशा लगाये बैठा हूं ।.... और यही तो मेरा सबसे बड़ा दुखान्त है कि मैं देखता कुछ और हूं .... **(हंसते हुए)** लगता है, मुझे समाधि में जाना ही होगा ।

इला : यहां.... ? इस रण-क्षेत्र में ?

वसिष्ठ : शायद मेरी आंखें धुंधली हो रही हैं । मुझे रक्तिम मृणाल धागों के गुच्छे आकाश से गिरते हुए दिखाई देते हैं !

इला : आप समाधि में जायेंगे.... और यह युद्ध ?

वसिष्ठ : **(पीड़ा से)** यह युद्ध ही तो मेरा अवदान है !

उर्वशी : अवदान.... या असम्भव को सम्भव बनाने की आकांक्षा ?

वसिष्ठ : यदि यह मात्र 'मेरी' आकांक्षा है तो उससे क्या होगा ? मैं इतिहास तो नहीं हूं । मैं गति तो नहीं हूं । मैं काल तो नहीं हूं ! हम एक साहसिक यात्रा पर निकल पड़े हैं.... बस । **(रुककर)** लेकिन यह अन्त नहीं है । मैं आगे की ओर एक धक्का देना चाहता हूं ! जिसमें हम समाप्त भी होंगे और आगे भी बढ़ेंगे ! आगे भी बढ़ेंगे और अक्षुण्ण भी रहेंगे....

इला : **(पास जाकर)** क्या आप यही देख रहे हैं आचार्य !

वसिष्ठ : **(अपनी आंखें दिखाते हुए)** देखिये न ! मेरी आंखें ! मेरी आंखें देखिये न !

इला : बहलाइए मत गुरुदेव !.... क्या सचमुच आप यही देख रहे हैं ?

वसिष्ठ : मैं जो देखता हूं, उसकी अनदेखी कैसे कर सकता हूं ।

इला : **(कातर भाव से)** इसे मत देखिये आचार्य ! मत देखिये ! **(दुलराती हुई)** नरिष्यन्त केवल मनु का पुत्र ही तो नहीं है, जिसके संग आप बचपन में खेलते थे !.... नरिष्यन्त केवल एक व्यक्ति ही तो नहीं है....

पुरूरवा का तेजी से उत्तेजित अवस्था में आगमन । पीछे-पीछे सूर्यबाहु । साथ में दो सैनिक, जिनके हाथों में बंधा हुआ, कटा सिर है । पुरूरवा इला की अन्तिम बात सुन लेता है ।

पुरूरवा : नरिष्यन्त 'है' नहीं– नरिष्यन्त 'था' । **(सैनिकों की ओर देखता है)**

वसिष्ठ : **(हाथों के संकेत से रोकते हुए)** जानता हूं.... जानता हूं और अत्यन्त प्रसन्न हूं ! **(चेहरे पर आहत भाव । उर्वशी की ओर घूमते हुए)** साम्राज्ञी ! आप भी इस अदृश्य-दर्शन की साक्षी होना चाहती हैं क्या ?

उर्वशी : मेरे लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता । फिर भी गुरुदेव चाहते हैं तो मैं जाती हूं.... **(जाने को उद्यत)**

वसिष्ठ : लगता है , सबसे कोमल चित्त मैं ही हूं ।

सभी वसिष्ठ को आहत आश्चर्य से देखते हैं । अन्धकार ।



दृश्य-छः

वही युद्ध-शिविर । वही मंच सज्जा । पुरूरवा उत्तेजना में टहल रहा है । टहलते हुए क्रुद्ध नेत्रों से कभी द्वार की ओर देखता है, कभी अपनी भुजाओं को झटकता हुआ निहारता है । तभी वसिष्ठ के साथ द्वार पर सनत्कुमार प्रकट होता है । लाल रेशमी वस्त्रों में सुसज्जित । बंधी हुई मोटी शिखा । गले में रुद्राक्ष । लाल त्रिपुण्ड । हाथ में कमण्डलु ।

वसिष्ठ : **(जैसे रास्ता दिखाते हुए)** आइए, आइए.... आसन ग्रहण कीजिए ब्रह्मचारी !

सनत्कुमार : सम्राट के आसन ग्रहण किये बिना मैं कैसे बैठ सकता हूं ।.... मैं इन्द्र का दूत हूं ।

पुरूरवा : वह तो हम आपके रेशमी वस्त्रों से ही समझ गये थे । चलिए, दूत बनकर आपकी नग्नता तो ढंक गयी ।

सनत्कुमार : **(पुरूरवा को देखकर मुस्कुराता है । फिर आशीर्वाद का हाथ उठाता है)** .... आयुष्मान् भव !

पुरूरवा : ओह ! कितना घिनौना आशीर्वाद है ! **(घृणापूर्वक)** आयुष्मान् भव !

सनत्कुमार : **(कमण्डलु से जल निकालकर चारों ओर छिड़कता है)**.... आसन ग्रहण कीजिए सम्राट !

पुरूरवा : जल क्यों छिड़कते हैं ? यहां कुछ भी अपवित्र नहीं है ।.... यह इन्द्र का दरबार नहीं है ।

सनत्कुमार : **(कमण्डलु एक ओर रखकर बैठता है)** महान इन्द्र बहुत दुखी हैं !

वसिष्ठ : हम उन्हें दुख पहुँचाना बिल्कुल ही नहीं चाहते थे ।

पुरूरवा : **(आवेश में)** गुरुदेव !

वसिष्ठ : आप देवराज से कह दें, हमारा युद्ध उनसे नहीं है ।

पुरूरवा : **(तिलमिलाता हुआ)** उनसे नहीं है ?

सनत्कुमार : यही तो महान मघवा भी कहते हैं !

पुरूरवा : यही तो महान मघवा भी कहते हैं ! और पुरूरवा के विरुद्ध उद्घोषणाओं का आयोजन कौन करवाता है !

सनत्कुमार : उद्घोषणाएं ! **(हंसता है)** उनका क्या अर्थ है ?

पुरूरवा : कोई अर्थ नहीं है ?

सनत्कुमार : अर्थ हो भी तो क्या ? **(मुस्कुराता हुआ एक बार वसिष्ठ फिर पुरूरवा को देखता है)**

पुरूरवा : हो भी तो क्या....! और आप दूत बनकर आये हैं !

सनत्कुमार : हो भी तो क्या.... या नहीं हो तो भी क्या ! उद्घोषणाएं तो जब कहिए, बदल दी जायेंगी ।

वसिष्ठ : बदल दी जायेंगी ?

सनत्कुमार : हां आं.... । वहां से सम्राट पुरूरवा का नाम हट जायेगा , वहां लिख दिया जायेगा— सम्राट नरिष्यन्त, नाभाग और पृषध्र ।.... वहां लिख दिया जायेगा— ऋषि-कुल । वहां लिख दिया जायेगा— ब्राह्मण.... पुरोहित.... धर्माचार्य.... कुछ भी....

पुरूरवा : अच्छा, आप मेरे कलंक के प्रति भी इतने निर्विकार हैं !

सनत्कुमार : निर्विकार रहना तो हमारा धर्म है राजर्षि !

पुरूरवा : लेकिन आप हैं नहीं.... आप बिल्कुल नहीं हैं ।

सनत्कुमार : आप कहते हैं तो न होंगे । **(हंसता है)**

पुरूरवा : तो.... ? उद्घोषणाएं बदल दी जायेंगी ?

सनत्कुमार : यह तो आपकी इच्छा पर निर्भर करता है !

पुरूरवा : आपके महान मघवा के लिए तब भी उसका कोई अर्थ नहीं होगा ।

सनत्कुमार : बिल्कुल नहीं होगा ।.... अर्थ तो केवल पक्ष-विपक्ष का होता है !

पुरूरवा : लेकिन पक्ष-विपक्ष केवल इधर-उधर हो जाने से नहीं बनता ।.... आपके लिए पक्ष-विपक्ष एक रणनीति है । आप आज इधर होते हैं, कल उधर । हमारे लिए वह एक विचार है.... मनुष्य-जाति के प्रति एक निर्धारित व्यवहार, एक सुनिश्चित संघर्ष की अभिव्यक्ति.... । हम जनता के साथ हैं इसीलिए हम विपक्ष हैं । हम घोषित करते हैं कि हम शत्रु-पक्ष हैं । और हम रहेंगे !

सनत्कुमार : आप भ्रम में हैं राजन् !.... आप शत्रु-पक्ष नहीं हैं ।

पुरूरवा : आपके लिए हम और कुछ नहीं हो सकते....

सनत्कुमार : आपका एक मनोहारी लक्ष्य है ।.... इसीलिए कहता हूं कि आप शत्रु-पक्ष नहीं हैं ।

पुरूरवा : शत्रु-पक्ष नहीं हैं और हत्यारे हैं ? शत्रु-पक्ष नहीं हैं और यज्ञ-विध्वंसक हैं ?

सनत्कुमार : क्षमा करें राजर्षि ! यज्ञों का विरोध सम्भव नहीं है ! क्योंकि आप एक द्वीप में नहीं रहते । आपके चारों ओर एक विशेष तरह के समाज हैं । आपके चारों ओर पृथिवी है ।यज्ञ तो अब संग्रह है और वही रहेगा । और हमारे आपके लिए यही हितकर भी है । आप संग्रह नहीं करेंगे तो आप लड़ भी नहीं सकते । आप निष्प्रभ.... निहत्थे हो जायेंगे.... ।

पुरूरवा : हम संग्रह के लिए नहीं.... संग्रह को ध्वस्त करने के लिए यहां.... इस युद्ध-भूमि में उपस्थित हैं.... जहां आप दुष्लाप कर रहे हैं और हम सुन रहे हैं.... ।

सनत्कुमार : यही तो.... यही तो महान मघवा भी चाहते हैं कि आप प्रतिष्ठान लौट जांय और विश्राम करें.... ! कितना शुभ होगा यदि आप आर्यों की सहस्त्रधारा में मिल जांय.... !

पुरूरवा : आर्यों की सहस्त्रधारा.... जिसमें आप जैसे बेंग ठिठुरते हुए टर्राते रहते हैं ?

सनत्कुमार : सोचिये मत राजर्षि !.... सोचने से मनुष्य की ऊर्जा का क्षय होता है।

पुरूरवा : **(फनफनाता हुआ। वसिष्ठ से)** गुरुदेव ! मैंने आपसे क्या कहा था ?

सनत्कुमार : आपने जो कुछ भी कहा होगा— ठीक ही कहा होगा।

पुरूरवा : और कोई पवित्र सन्देश है आपके कमण्डलु में ?

सनत्कुमार : इन्द्र तो सन्ताप में हैं कि ऐसा अवसर ही क्यों आया। वे तो उर्वशी को भी सम्मानपूर्वक आपको सौंपना चाहते थे।

पुरूरवा : हम उस बूढ़े व्यभिचारी के इस झांसे में नहीं आने के.... समझे आप।

सनत्कुमार : मुझे तो इस तरह के शब्दों का अर्थ भी नहीं मालूम राजर्षि !

पुरूरवा : आपको किसी भी शब्द का अर्थ नहीं मालूम। आप जो ब्रह्म-विद्या में पारंगत हैं न ! आपको 'ब्रह्म' शब्द का भी अर्थ नहीं मालूम। आप उसे भी निस्संग, निराकार बना देते हैं। क्योंकि सोचने से आपकी ऊर्जा का क्षय होता है। इसीलिए आप एक मृत समाधि में रहते हैं .... और जैसा कि मैंने कहा, केवल दुष्लाप करते हैं।

सनत्कुमार : क्रोध राजन्य वर्गों की शोभा है।.... आपको भी भला लगता है ।

पुरूरवा : **(वसिष्ठ से)** गुरुदेव ! इस अद्वितीय पाखण्डी को आप यहां क्यों लाये ?

सनत्कुमार : मैं तो अखण्ड हूं राजर्षि ! मेरे लिए तो सभी रंग एक हैं ! मेरे लिए तो सभी कुछ सार्वभौम सत्य है !

पुरूरवा : इसीलिए तो मैंने कहा— अद्वितीय पाखण्डी। **(रुककर)** जाइए मृत महानुभाव ! कह दीजिए अपने महान वृत्रहन्ता से कि हम रेशमी वस्त्रों से प्रभावित हो गये। कह दीजिए कि उनका दुःख जानकर महर्षि वसिष्ठ तो मूर्च्छित हो गये और पुरूरवा आक्रान्त।.... और उर्वशी !.... वह तो अमरावती लौटने के लिए छटपटाने लगी !

सनत्कुमार : **(वसिष्ठ से)** आप तो अपना हठ छोड़ दीजिए महर्षि !

वसिष्ठ : **(चौंकते हैं)** मेरे पास कौन सा हठ सुरक्षित है ब्रह्मचारी !

सनत्कुमार : 'उषा गान' के साथ महान वृत्रहन्ता के शौर्य को भी देखिये.... !

वसिष्ठ : **(व्यंग से)** देखता तो हूं.... चारों ओर वही तो देख रहा हूं।

सनत्कुमार : अपनी अविश्रान्त प्रतिभा से देखिये महर्षि ! और प्रशंसा-भाव से देखिये !

वसिष्ठ : हमें अपनी भुजाएं काटने को मत कहिए ब्रह्मचारी !

सनत्कुमार : इन्द्र तो आर्यों के आसन्न विनाश से चिन्तित हैं।.... वे तो असुरों के साथ संग्राम में **(पुरूरवा की ओर उन्मुख होकर)** सम्राट के शौर्य की हुंकार सुनना चाहते हैं !

पुरूरवा : तब तो मुझे सबसे पहले उन्हीं से लड़ना पड़ेगा। तीनों लोकों में उनसे बड़ा असुर कौन है !

सनत्कुमार : **(कमण्डलु से जल निकालकर छिड़कते हुए)....** इन्द्र संरक्षक हैं। इन्द्र भावमय हैं। इन्द्र कोमल हृदय हैं। इन्द्र उदात्त मस्तिष्क हैं। इन्द्र वीणा की मन्द्र झंकार हैं। इन्द्र सनातन सत्य हैं। इन्द्र वही हैं राजर्षि .... जो आप हैं।

वसिष्ठ : ब्रह्मचारी ! आपके आने का मंतव्य.... सम्राट का अपमान तो नहीं है ?

सनत्कुमार : अपमान और सम्मान से मैं परे हूं महर्षि !
वसिष्ठ : लेकिन हम तो नहीं हैं।
सनत्कुमार : आप भी हो सकते हैं.... आप भी। क्योंकि जो सम्मान है वही अपमान है और जो अपमान है वही सम्मान। लेकिन आपकी इन्द्रियां आपके वश में नहीं हैं। इसीलिए तो आप अनुभव करते हैं। और अनुभव करते हैं इसीलिए मरते हैं।....मैं तो अनुभव ही नहीं करता। मैं तो निरुद्देश्य हूं। मैं तो रमा हुआ हूं। मैं तो हूं ही नहीं ....।
पुरूरवा : ओफोफ.... यह कैसा दुःस्वप्न है !
वसिष्ठ : **(उठते हैं)** चलिये ब्रह्मचारी !
सनत्कुमार : **(कमण्डलु से जल छिड़कते हुए)** अच्छा राजर्षि ! जाता हूं। कहूंगा इन्द्र से कि उनका कार्य सम्पन्न हो गया....।
पुरूरवा : **(सामने जाकर खड़ा हो जाता है)....** अर्थात् ?
सनत्कुमार : **(चुपचाप पुरूरवा को भेदक दृष्टि से देखता रहता है। फिर हंसता है)** अर्थात् ?.... कुछ भी नहीं.... कुछ भी तो नहीं !

प्रस्थान। वसिष्ठ द्वार तक छोड़ने जाते हैं। फिर लौटते हैं। पुरूरवा क्रुद्ध-खिन्न टहलता रहता है।

वसिष्ठ : सम्भवतः उन्हें अभी भी आशा है। वे अपना हठ छोड़ने को तैयार नहीं हैं और हमसे कहते हैं। इसका निर्णय तो सिर्फ युद्ध ही करेगा। इस समाज में युद्ध ही तो सार्वकालिक सत्य बन गया है। समझौता या विचार-विमर्श या दौत्य लगभग निरर्थक हैं। उसका वे कवच की तरह इस्तेमाल करते हैं.... हमें सूंघते हैं। हमारी सुगन्धि से घबराकर अपनी खड्ग की धार को सान पर चढ़ाते हैं.... इरादों को और खूंखार बनाते हैं....
पुरूरवा : फिर आप इतने विनम्र क्यों हो जाते हैं....
वसिष्ठ : विनम्रता ? विनम्रता हमारी टंकार है....।
पुरूरवा : ये लोग आपकी विनम्रता के योग्य नहीं हैं गुरुदेव !
वसिष्ठ : ये सभी लोहे के बिल में छिपे हुए चुहड़े हैं।... जूठन चाटने के लिए कभी- कभार बाहर आते हैं। और आहट पाते ही पुनः बिल में घुस जाते हैं उस ठण्डे.... लौह एकान्त में, समझते हैं, सुरक्षित हैं। नहीं जानते कि बिल फोड़कर रात के अंधेरे में भी निकल भागना इनके लिए सम्भव नहीं है....।
पुरूरवा : उनके बारे में यह जानकर भी क्या होगा आचार्य !
वसिष्ठ : जानकर यह होगा कि एक निहंग सत्य हमारे हाथ लगेगा।.... यह कि काल-प्रवाह में इनका पतन अनवरत.... अबाध गति से होगा।.... यह कि हम शत्रु हैं। यह कि.... इस समाज में अभी शत्रुता एक मूल्य है !
पुरूरवा : शत्रुता एक मूल्य है और हम लांछित होते रहते हैं ?
वसिष्ठ : ऐसा सिर्फ लगता है। क्या इन्द्र यह कहते कि मैं सत्यवादी, निष्कलंक, पुरूरवा से युद्ध ठान रहा हूं ?.... लेकिन शब्द बोलने से ही अर्थवान नहीं हो जाते !.... वाणी तो सच की चमक से संवरती है। और वह चमक

छिपती नहीं। इन्द्र ने तो अपने पिता की हत्या में भी सत्य और न्याय का हवाला दिया था। तो क्या वे लांछना से बच गये ! क्या आज सारा त्रिलोक यह नहीं जानता कि इन्द्र उषाहन्ता, वृत्रहन्ता ही नहीं, पितृहन्ता भी हैं। **(रुककर)** सबके अपने-अपने निजी सत्य नहीं हो सकते। .... सत्य और न्याय तो अखण्ड हैं.... क्योंकि वे मनुष्य की पीड़ा.... उसके उत्थान से एकबद्ध हैं। उन्हें धुंधलाया नहीं जा सकता !

पुरूरवा : गुरुदेव ! वे युद्ध को तो धुंधलाने का प्रयत्न कर रहे हैं ....।

वसिष्ठ : युद्ध तो हमारे आत्मन् में रचा हुआ है। **(पुरूरवा को एकटक निहारते हुए)** और हमारा आत्मन् स्फटिक है.... युद्ध तो चलेगा ही....।

पुरूरवा : कब तक गुरुदेव !

वसिष्ठ : हमारे 'नहीं' हो जाने तक.... हमारी अन्तिम विजय तक।

पुरूरवा : गुरुदेव ! **(वसिष्ठ पुरूरवा का मुंह ताकते हैं। पुरूरवा सिर नीचा कर लेता है)**

वसिष्ठ : बोलो राजर्षि !.... क्या मुझसे कोई भूल हो गयी ?

पुरूरवा : **(द्रवित)**....आपसे प्रार्थना है।.... आप शिविर में नहीं रहते।

वसिष्ठ : **(हंसते हैं)**.... रहता हूं सम्राट !.... आपकी चिन्ता समझता हूं। आजकल .... दिन में भी सोता रहता हूं। आंखें दुखती हैं। सपने भी नहीं आते।.... कभी-कभी गहन निद्रा में मेरी नाभि में एक रौद्र स्वर बजता है।.... कल रात.... जब मैं उस सम्मोहन से बाहर आया तो मेरे आत्मन् ने कहा— अरे, यह तो 'यमगाथा' है !

पुरूरवा : यमगाथा ?

वसिष्ठ : **(जैसे स्वगत)** एक अनहोने प्रकार के ऋकों का समूह, जिन्हें मैं देखना नहीं चाहता !.... वह स्वर-सम्मोहन, जिसे मैं सुनना नहीं चाहता। चीत्कार, हत्या, आहत-विजड़ित नेत्र, आर्त्तनाद, गर्जन, कौंध.... अन्धत्व.... अन्धकार । और फिर एक हिरनी के गर्भ को फाड़कर निकलता हुआ सुनहरी अयालों वाला सिंह। **(रुककर)** गरजता है। बार-बार गरजता है। मेरी नाभि दुखने लगती है। मेरी आंखें दुखने लगती हैं। उस स्वर-संगम से मुक्ति नहीं है। न चाहने से क्या होता है। मुझे सुनना तो पड़ेगा ही.... देखना तो पड़ेगा ही.... जाना तो पड़ेगा ही— उस रौद्र स्वर-सम्मोहन के पीछे.... मुग्ध-मृग की तरह....।

पुरूरवा : **(गहन उदासी में आविष्ट)** चले जाइए गुरुदेव ! सत्य से विमुख मत होइए। चाहे वह आपके आत्मन् के विरुद्ध ही क्यों न जाता हो ! छोड़ दीजिए मुझे.... मेरे विवर्ण एकान्त में.... मेरे निर्विकल्प संघर्ष में....।

वसिष्ठ : जाने का अर्थ है सन्नद्ध होना.... पहचानना.... सत्य को जर्जर होने से बचाना और अपनी सन्तानों के लिए अंकित कर जाना। किसी भी परिस्थिति में मुझे अपने धर्म से विचलित नहीं होना है राजर्षि !

पुरूरवा : और मुझे ?

वसिष्ठ : तुम ?.... तुम तो एक निरन्तरता हो।

पुरूरवा : कब तक ?

वसिष्ठ : नये मुक्ति-यज्ञ की पूर्णाहुति तक।

पुरूरवा : केवल निरन्तरता ? केवल गति ?.... कोई विश्राम नहीं.... कोई गन्धमादन नहीं ?

वसिष्ठ : तुम्हें याद है राजर्षि ! **(पुरूरवा ध्यान से देखता है)**.... जब तुम छोटे थे । कन्दराओं के निभृत अन्धकार में मैं तुम्हारे लिए गाता था। और उसकी अनुगूंज दूसरी ओर से आती थी। अंधेरे में तुम मुझे टटोलते हुए कहते थे, गुरुदेव आप कहां हैं ? मैं कहता था, मैं तो यहां हूं– तुम्हारे पास। तुमसे सटा हुआ। और तब तुम कहते थे, किन्तु आपके स्वर तो उधर से .... वहां से.... चारों ओर से आ रहे हैं। **(उसी तरह आविष्ट)**.... और वह शाल वृक्ष ! अभी भी वहीं होगा। उसकी घनी छांह में मैं लेटा रहता था ! और तुम ? और भी छोटे थे तुम। इतने.... कि मेरे वक्ष में अंट जाते थे। मेरे वक्ष पर लेटे हुए शाल-वृक्ष के हिलते पत्तों की लय में हाथ-पांव फेंकते हुए किलकारियां मारते रहते थे तुम ! **(पुरूरवा अत्यन्त उदास। वसिष्ठ उसे स्नेह से निहारते हुए)**... और अब ? यह पृथिवी तुम्हारे लिए कितनी छोटी पड़ गयी है !.... तो सुनाई तो पड़ रही हैं अनुगूंजें.... सभी दिशाओं से। क्योंकि सभी दिशाएं तो तुम्हीं हो। देखना.... एक दिन तुम अन्तरिक्ष भी होगे, आकाश भी होगे, बादल भी होगे। और प्रतिध्वनियां लौटेंगी बार-बार ! इतनी बार– कि वे मिल-जुलकर एक अनादि-अनन्त लय बन जायेंगी.... पृथिवी को, देवलोक को, सारे ब्रह्माण्ड को गुंजाती हुई....

उठते हैं। जाने को उद्यत। पुरूरवा एकाएक दौड़कर लिपट जाता है।

पुरूरवा : गुरुदेव !

वसिष्ठ : **(वात्सल्य से सहलाते हुए)** स्मृति ही संस्कृति है ! वही दीप्ति है। वही जीवन है। वही सत्य है। वही संघर्ष है।.... उसी का संचय करो।

प्रस्थान। पुरूरवा एक शान्त उदासी में आविष्ट। अपने हाथों में अपना चेहरा लिए, आंखें फाड़ शून्य में घूरता है। फिर जैसे उसकी संज्ञा लौटती है। दूर.... कहीं बादलों की मन्द्र गर्जन और बिजली की तीव्र कौंध....। बार-बार। पुरूरवा दर्शकों को इस तरह देखता है जैसे पहचानने का प्रयत्न कर रहा हो। फिर वह अपने केश झटकता हुआ खोलता है। फिर टहलने लगता है।

पुरूरवा : **(जैसे स्वगत भाव से)** स्मृति ?.... स्मृति में तो दारुण यातनाएं हैं। पर्वत कन्दराएं हैं। तड़तड़ाकर जलते हुए वन हैं। पृथिवी की हड्डियां चटकाते युद्ध हैं। आर्तनाद करते समुद्र हैं।.... स्मृति में तो खौलता हुआ ब्रह्माण्ड है !.... स्मृति में तो मुक्ति के लिए तड़फड़ाते हुए जन हैं।.... स्मृति में तो राख होती हुई मां है।.... स्मृति में तो निश्चिन्त सोई हुई पत्नी

है !.... स्मृति में तो हिमाग्नि सा सुलगता गुरु है !.... स्मृति तो सर्वग्रासी पंजे फैलाती है....

एकाएक बाहर तीव्र चीत्कार । पुरूरवा चौंककर द्वार की ओर देखता है । पुनः विचित्र प्रकार का आर्त्तनाद । पुरूरवा कानों पर हाथ रखता है , फिर रुककर कोलाहल की ओर कान लगाता है । प्रहरी को आवाज लगाता है । तभी हड़बड़ाये हुए प्रहरी के साथ, बदहवास.... इला, उत्पलाक्षी, सूर्यबाहु, कृष्णनाग और चार-पांच सैनिकों का प्रवेश । सभी आंखें फाड़कर पुरूरवा को देखते हैं फिर एक साथ चिल्लाते हैं– 'साम्राज्ञी उर्वशी को गन्धर्व ले गये । साम्राज्ञी उर्वशी का हरण हो गया ।' पुरूरवा आंखें फाड़े पूरी भीड़ को घूरता रहता है, घूरता रहता है फिर एकाएक तेजी से बाहर की ओर भागता है । सूर्यबाहु उसके पीछे जाता है । तभी वसिष्ठ दूसरी ओर से भागते हुए प्रवेश करते हैं । सारी भीड़ उनकी ओर यन्त्रवत, विजड़ित घूमती है । अन्धकार

★

दृश्य-सात

अच्छोद सरोवर के नीचे गन्धर्व-महल । उर्वशी की खोज में भटकता हुआ पुरूरवा । चारों ओर आश्चर्य-चकित, आंखें फाड़े हुए घूरता है । ऊपर-नीचे दायें-बांयें देखता है । उत्तेजना और अनिश्चय के धक्के में दौड़-दौड़कर दीवारों का स्पर्श करता है ।

पुरूरवा : अरे, वह द्वार किधर गुम हो गया ! **(जोर से पुकारता है)**.... सेनापति !.... सेनापति । .... सूर्यबाहु । **(ऊपर सीढ़ियों की ओर दौड़ता है)** यहीं तो खुला था वह द्वार ! **(जोर-जोर से दीवारों को पीटता है)** कहां गया वह विशाल बरगद का वृक्ष.... जिसकें कोटर से मैंने प्रवेश किया ! **(सिर को छूता है । केशों को झटकता है । फिर अपने वक्ष को स्पर्श करता है । हाथों को झटकता है)** मैंने कवच और शिरस्त्राण तो बाहर ही उतार दिये ! और खड्ग और धनुष.... बाहर ही छोड़ दिये ! कितना संकरा था वह भीतर प्रवेश करने का मार्ग.... **(फिर दीवारों को थपथपाता है)** और वह अन्तरिक्ष-स्वर.... जिसने कहा था कि द्वार यहां है .... वट-वृक्ष के कोटर में । .... वह अन्तरिक्ष-स्वर भी चुप हो गया ! **(नीचे भागता है)**

कितनी बार मैंने देवि उर्वशी के संग उस वट-वृक्ष की घनी छांह में विश्राम किया है ! उसकी लम्बी बरोहें पकड़कर हम झूलते रहे हैं ! कितनी बार जल की छप-छप काटते हुए हम सरोवर के मध्य तक गये हैं ! कितनी बार हंसों ने हमारे चारों ओर एक उजली चादर तान दी ।.... और कितनी बार सरोवर के नीले जल में आंखें खोले हम अतल तक डूबे हैं ।– और कभी नहीं जाना कि यहां नीचे यह बिजली का जल-महल भी है !

(ऊपर की ओर देखता है । कान लगाता है) ऊपर जल की छप-छप हिलकोरें हैं । इन चिकनी द्वार-हीन दीवारों के दायें-बायें, ऊपर-नीचे.... सर्वत्र जल की नीली दीवारें हैं । और दीवारों के भीतर यह ठण्डा, सफेद सन्नाटा !

(सुनने का नाट्य करता है) और इस निःशब्दता के भीतर यह रह-रहकर उठती चीत्कार ! इसी चीत्कार ने तो मुझे इधर आकर्षित किया था ! हमने अपने अश्वों की वल्गायें खींच ली थीं ! **(सुनने का नाट्य)**.... और यह झीम....झीम– झांय-झांय, यह काले सर्पों की सीत्कार ! यह शायद, बाहर झाऊ के वनों में सिसकती हवा है....

(एकाएक उत्तेजित स्वर में).... कोई भी हो वह.... देवता, गन्धर्व या मनुष्य.... आकाश, अन्तरिक्ष.... हवा या बादल.... जिसने भी मेरा मार्ग-दर्शन किया.... बोलो ! मुझे उस आर्त्तनाद तक पहुंचना ही है ! बोलो.... मेरी अग्नि कहां है ? मैं उसे धारण किये बिना नहीं लौटूंगा । मैं इस पारदर्शी

धुएं में नहीं रह सकता। बोलो.... अन्यथा ये दीवारें मैं ध्वस्त कर दूंगा.... **(मुट्ठियों को प्रहार की मुद्रा में तानता है)**

अन्तरिक्ष-स्वर : यह अप्सरा उर्वशी का जल-महल है ! अप्सरा को दुख होगा, यदि सम्राट प्रहार करेंगे।

पुरूरवा : **(अपनी मुट्ठियों को रोक लेता है)** देवि उर्वशी कहां हैं ?

अन्तरिक्ष-स्वर : देवि उर्वशी विश्राम कर रही हैं !

पुरूरवा : **(दौड़कर दूसरी दीवार तक जाता है)** मुझे अग्नि तक पहुंचायें ! मेरा मार्ग-दर्शन करें।

अन्तरिक्ष-स्वर : व्यग्र न हों राजन् ! कृपया प्रतीक्षा करें !

एकाएक सफेद दीवारों पर बिजली की तीव्र कौंध। पुरूरवा चौंधिया जाता है। आंखों पर हथेलियां रखता हुआ ऊपर देखने की कोशिश करता है। बार-बार अन्धकार और बार-बार तीव्र कौंध । पुरूरवा उस तीव्र, अन्धे प्रकाश से बचने के लिए बार-बार अपने शरीर को दायें-बायें, ऊपर-नीचे झुकाता है। इधर-उधर हटता है। हाथों की ओट लेता है। ऊपर सीढ़ियों की ओर भागता है। नीचे आता है। प्रत्येक बार अन्धकार होने पर जैसे चिंघाड़ के साथ दीवारें खिसकती हैं और पुरूरवा स्तब्ध-चकित देखता है कि वह एक नये प्रकोष्ठ में पहुंच गया है।

फिर सहसा बिजली की कौंध बन्द हो जाती है। सन्नाटा उभर आता है। और मद्धिम लाल-कत्थई रोशनी में पूरा मंच नहा उठता है। जैसे पुरूरवा की चेतना लौटती है। जैसे वह सुस्ताने लगता है और फिर एकाएक झटके से विंग की ओर घूरने लगता है। घूरता रहता है। फिर जैसे प्रतिरोध और हिंसात्मक क्रोध में कभी आगे बढ़ता है, कभी पीछे हटता है। फिर पीछे हटता हुआ प्रकोष्ठ के सिलहुत स्तम्भ से टिक जाता है।

अचानक दीवारें फोड़कर चारों काली आकृतियां आगे बढ़कर पुरूरवा के ऊपर एक मोटा रस्सा फेंकती हैं। पुरूरवा बचने का कठिन प्रयत्न करता है। लेकिन काली आकृतियां रस्से में पुरूरवा को तीन बार लगातार प्रकोष्ठ के खम्भे के चक्कर लगाती हुई लपेटती हैं। उसके वक्षस्थल, पीठ और भुजाओं के इर्द-गिर्द रस्सा 'हुम्म हुम्म' की आवाज के साथ कसता जाता है। तभी चारों ओर से एक हिंसक भीड़ चिंघाड़ती हुई पुरूरवा के इर्द-गिर्द एक गोला बनाती है। भीड़ का वृत्त पुरूरवा के चारों ओर कसता हुआ, आगे बढ़ता है। वज्र के हाथों में गदा है। नाभाग के हाथों में आकर्ण खिंचा हुआ धनुष-बाण। चारों देव-सैनिकों के हाथों में चमकते हुए खड्ग। नारद के हाथों में वीणा, सनत्कुमार के हाथों में कमण्डलु। भरत मुनि के हाथों में सोने की मूंठ वाली छड़ी। दोनों ऋषियों के हाथों में भोजपत्र की पट्टिकायें। दोनों

पुरोहितों—कश्यप और विभावक के हाथों में नर-मुण्ड । और चित्रसेन तथा विश्वावसु के हाथों में घुंघरू । सभी लोग दोनों हाथों में अपने ये अस्त्र-शस्त्र उठाये हुए प्रहार की मुद्रा में आगे बढ़ते हैं । आगे बढ़ते हुए एक झटके के साथ पूरा दृश्य एक 'स्टिल' में जड़ हो जाता है । तभी अन्तरिक्ष से समवेत गान उभरता है....

अन्तरिक्ष-स्वर : बांवो, इस अगिन-पशु को बांवो ।
बांवो, इस बादल-पशु को बांवो ।

यह भूतकाल में धुंआता है
यह वर्तमान में सुलगता है
यह भविष्य में घुमड़ता है
बांवो, इस प्रजापति पशु को बांवो ।
बांवो, इस अरण्य-पशु को बांवो ।

यह देवलोक की कंपकंपी है
यह पृथिवी का स्मरण है
यह पाताल का कंवल है
बांवो, इस विचार-पशु को बांवो ।
बांवो, इस सर्वव्यापी पशु को बांवो ।

इसकी पसलियों में वसन्त
जिह्वा पर ग्रीष्म
हृदय में हिमालय
ब्रह्माण्ड में अनहद-नाद
बांवो, इस ओंकार-पशु को बांवो ।
बांवो, इस पहाड़-पशु को बांवो ।

कसो, इसे त्रिकाल के फन्दे में कसो ।
सांसो, इसे त्रिलोक की फांस में सांसो ।
नाथो, इसे अमरता की बंवर में नाथो ।

इस अगिन-पशु को बांवो ।
इस बादल-पशु को बांवो ।

बांवो, इस त्रिकालदर्शी पशु को बांवो ।

अन्धकार । और फिर एक तीव्र रक्तिम आलोक । विंग से एक हाथ में सोमरस का चषक और दूसरे में नंगी तलवार लिए इन्द्र

का प्रवेश। पूरे 'स्टिल' को निहारता हुआ मंच का एक चक्कर लगाता है। फिर हवा में तलवार ऊपर लहराता हुआ जोर से चिंघाड़ता है।
अन्धकार।



पुरुषमेध



दृश्य-एक

पर्दा खुलने पर इन्द्र दिखाई देता है। प्रकोष्ठ में तेज कदमों से चक्कर लगाता हुआ। विकृत। अधेड़। दुस्साहस, असहायता, थकान और पस्ती में लिथड़ा हुआ। दो व्यक्ति और हैं– विश्वावसु और वज्र। दोनों मंच के दो ओर चुपचाप हाथ बांधे खड़े हैं। वज्र सेनापति के वेष में है। विश्वावसु भी अपने पारम्परिक वेष में न होकर चुस्त-दुरुस्त सैनिक वेष में है। उसके कमरबन्द से छोटी तलवार लटक रही है। पूरे प्रकोष्ठ में दो-तीन आसन हैं। एक ओर कोने में दीपाधार पर दीप जल रहा है। वहीं एक स्वर्ण-कलश और एक बड़ा काष्ठ-चषक रखा है।

इन्द्र : **(विश्वावसु की ओर घूमते हुए)** क्या हुआ ?.... कुछ हुआ ?

विश्वावसु : कुछ नहीं हो सकता प्रभु !

इन्द्र : तुमने सारे प्रस्ताव रखे ?

विश्वावसु : मैंने सारे प्रस्ताव रखे देवेन्द्र !

इन्द्र : फिर ? उसने क्या कहा ? फिर कुछ क्यों नहीं हुआ ?

विश्वावसु : सम्राट पुरूरवा सिर्फ हंसते हैं देवराज !

इन्द्र : हंसता है ? हंसता है.... प्रस्तावों को सुनकर ? क्यों ? **(रुककर.... जैसे स्वगत)** वह विक्षिप्त हो गया होगा। अपमान और यातना ने उसे तहस-नहस कर दिया होगा। **(वज्र के पास जाकर)** वह गिरेगा। वह झुकेगा अन्ततः। देखना ....देखना तुम लोग। किसी भी मर्त्य में इतना साहस कहां है ! वह झेल नहीं सकता....

विश्वावसु : सम्राट बहुत शान्त हैं देव !

इन्द्र : **(ध्यान न देते हुए.... अपनी ही रौ में)** वह चक्रवर्ती बनना नहीं चाहता ! वह आसमुद्रान्त राज्य नहीं चाहता? **(विश्वावसु अस्वीकृति में सिर हिलाता है)**.... और तुमने गन्धर्व योनि में जाने की बात कही ?

विश्वावसु : कहा प्रभु !... सभी कुछ कहा।

इन्द्र : **(कुछ आश्चर्य से)** अर्थात वह उर्वशी को साथ लेकर नारायण ऋषि के आश्रम में भी नहीं जाना चाहता ?

विश्वावसु : नहीं।

इन्द्र : नहीं ?

विश्वावसु : **(कुछ चापलूसी में)** इसका अर्थ है कि सम्राट पुरूरवा उर्वशी से प्रेम नहीं करते।

इन्द्र : **(क्रोध में)** चुप रहो हो तुम.... तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा। **(टहलते हुए)** यही तो समस्या की धार है। उर्वशी से भी बड़ा कोई लक्ष्य है। और यही मैं नहीं चाहता था। **(पलटकर)** तुमने कहा कि ,बाजी अब

हमारे हाथों में है ?

विश्वावसु : कहा था देवेन्द्र !

इन्द्र : तब ?

विश्वावसु : इसी एक बात का तो उत्तर मिला।

इन्द्र : **(उत्सुक)** क्या उत्तर मिला ?

विश्वावसु : सम्राट पुरूरवा ने कहा, "बाजी हमेशा उनके हाथों में होती है गन्धर्व.... जो सत्य के लिये मरने की ठान लेते हैं।"

इन्द्र : **(विश्वावसु को घूरता रहता है। फिर पलटकर वज्र की ओर जाता है। फिर आकाश को घूरता है। फिर चीखकर बोलता है)** तो मरो....वन्य पशु ! अवश्य मरो ! **(हांफता हुआ जाकर आसन में धउस जाता है। विश्वावसु प्रकोष्ठ के कोने में जाकर सोमरस से चषक भरता है। इन्द्र झटके से उठता है और वज्र के कन्धे पकड़कर झंझोड़ने लगता है)**....और तुम महाविजयी !.... तुमने क्या किया ?

वज्र : **(जड़वत्)** मैं तो आपका अमोघ अस्त्र हूं प्रभु !.... जिधर भी संधान करेंगे, वह दिशा शत्रु-विहीन हो जायेगी।

इन्द्र : और न हुई तो ? या शत्रु ने तुम्हें सहला दिया तो ? तुम्हारे भीतर महत्वाकांक्षा की लुत्ती लगा दी तो ?....तो पलटकर मेरा ही वक्षस्थल चीर दोगे ?.... क्यों ? **(वज्र कोई उत्तर नहीं देता। कठपुतले की तरह शून्य में देखता रहता है। इन्द्र उसे कुछ पल देखता रहता है। उत्तर न पाकर हाथ पीछे बांधे कुछ सोचता हुआ-सा टहलने लगता है। विश्वावसु सोमरस का चषक लिये चुपचाप खड़ा है। टहलते हुए अचानक इन्द्र की निगाह विश्वावसु की लकड़ीनुमा टांगों और कमर से लटकती तलवार पर पड़ती है)** .... इधर आओ। **(विश्वावसु सोमरस का चषक लिये इन्द्र की ओर बढ़ता है। इन्द्र, तलवार की ओर इशारा करते हुए)** .... यह क्या है ? **(विश्वावसु घबराहट में मुस्कुराता है। इन्द्र नीचे... उसके पैरों की ओर देखता है)** तुम्हारे घुंघरू कहां गये ? **(तलवार की ओर इशारा करता है)** .... लाओ इधर **(विश्वावसु म्यान से तलवार निकालकर देता है। इन्द्र उसकी धार परखता है.... व्यंग से)** बड़ा अनमोल आभूषण है।

विश्वावसु : **(आंखें नीची किये हुए)** गन्धर्वराज चित्रसेन ने दिया है वृत्रहन्ता !

इन्द्र : कमर में तलवार खोंसना कबसे आवश्यक हो गया तुम्हारे लिये .... ?

विश्वावसु : नहीं देवेन्द्र ! यह बात नहीं है।

इन्द्र : फिर ?.... फिर क्या बात है ?

विश्वावसु : **(सकपकाते हुए)** गन्धर्वराज कहते हैं.... चारों ओर शत्रु हैं।

इन्द्र : **(व्यंग से)** ओहो.... तब तो यहां भी होंगे।

विश्वावसु : **(सोमरस का चषक बढ़ाते हुए)** क्षमा करें प्रभु ! भूल हो गयी।

इन्द्र : भूल तो तुमसे अक्सर हो जाती है। **(चषक पकड़ते हुए)** उर्वशी कहां

है ?

विश्वावसु : निचले प्रकोष्ठ में बन्द है।

इन्द्र : **(घूंट लेकर.... घूरता हुआ)** और उसका पुत्र ?

विश्वावसु : **(जल्दी से.... हकलाता हुआ)** जैसा कि आपका आदेश था.... जैसा कि आपका आदेश था....

इन्द्र : हां.... हां.... बोलो।

विश्वावसु : मैंने उसे वैदूर्य पर्वत की चोटी से नीचे फेंक दिया ....।

इन्द्र : **(उठकर विश्वावसु के पास जाता है । विश्वावसु भयाक्रान्त दीखता है । इन्द्र .... उसके कन्धों पर हाथ रखते हुए)** तुम्हीं लोगों की स्वामिभक्ति पर तो टिका हूं मैं।.... लेकिन देखो, ऐसे नहीं फेंकना चाहिए था। यह तलवार तब नहीं थी तुम्हारे पास ?

विश्वावसु : थी वृत्रहन्ता !

इन्द्र : **(घूंट लेते हुए)** उर्वशी के पुत्र को इसकी नोक पर उठाकर हवा में लहराना चाहिए था । यूं.... **(तलवार ऊपर उठाता है । गोलाई में नाचता हुआ उसकी नोक पर नजर टिकाये है)**.... तब फेंकना चाहिए था। **(तलवार घुमाकर फर्श पर फेंकता है)**

विश्वावसु : **(उत्साहित होकर)** मैंने ऐसा ही किया था देवेन्द्र !

इन्द्र : **(ऊपर देखता हुआ ठठाकर हंसता है । विश्वावसु की ओर पलटकर)** और ?.... उर्वशी को यह शुभ समाचार दे दिया ?

विश्वावसु : वह जानती है प्रभु !

इन्द्र : **(खाली चषक विश्वावसु की ओर बढ़ाते हुए)**.... उसे जानना चाहिए विश्वावसु !.... उसे सदा के लिये जानना चाहिए.... स्त्री का गर्भाशय ही उसका सबसे बड़ा शत्रु है। **(विश्वावसु पुनः चषक भरकर देता है)** अच्छा... तुम जाओ। **(विश्वावसु जाने को उद्यत । फर्श पर पड़ी हुई तलवार को चोर-निगाहों से देखता है)** हां.... हां उठा लो। लेकिन सावधान रहना, कहीं तुम्हारी आंतों में न घुस जाय। **(हंसता है। विश्वावसु का प्रस्थान । इन्द्र, थोड़ा रुककर—वज्र से)** विजयी सेनापति जी, आप भी कोई शुभ समाचार दीजिए।

वज्र : आपकी कृपा है प्रभु !

इन्द्र : प्रतिष्ठान कैसा है ?

वज्र : प्रतिष्ठान के खंडहरों में रेत झर रही है।

इन्द्र : थोड़े दिनों में वहां एक टीला बन जायेगा। घास-फूस, झाड़-झंखाड़.... कुछ बंझा पेड़ उग आयेंगे। कीड़े-मकोड़े अपना घर बना लेंगे।

वज्र : दस्यु और अनार्य जंगलों में भाग गये हैं।

इन्द्र : **(झटके से खड़ा हो जाता है)** जंगलों में भाग गये हैं ? .... लेकिन क्यों ?

वज्र : हमारी सेनाओं के पहुंचने से पहले ही भाग गये थे।

इन्द्र : तो उन जंगलों को जला दो।

वज्र : हमने जंगलों को जला दिया। फिर वे दूसरे जंगलों में भाग जाते हैं।

इन्द्र : तो उन्हें भी जला दो।

वज्र : हमने ऐसा ही किया।.... हम यही कर रहे हैं। लेकिन वे और भीतर की ओर भाग जाते हैं।

इन्द्र : **(टहलता हुआ-क्रोध में)** सारी पृथिवी के जंगलों को जला दो।

वज्र : हम ऐसा नहीं कर सकते वृत्रहन्ता !

इन्द्र : **(जोर से)** क्यों ? क्यों नहीं कर सकते ?

वज्र : क्योंकि अग्नि हमारे साथ नहीं हैं।

इन्द्र : **(हतप्रभ-सा)** क्यों ?

वज्र : क्योंकि पुरूरवा ने अग्नि उन्हीं अमानुषों को सौंप दी है।

इन्द्र : मैंने क्या कहा था तुमसे ?.... इसके पहले कि वे भाग निकलें उन्हें निहत्था कर दो। उनकी अन्तरात्मा को कुचल दो।

वज्र : अन्तरात्मा का प्रश्न नहीं है देवेन्द्र.... भूख का प्रश्न है। अन्तरात्मा के बिना वे रह सकते हैं। भोजन के बिना नहीं रह सकते।

इन्द्र : तुम भूलते हो वज्र !.... तुम नहीं जानते। मैं इन्हें सदियों से जानता हूं। ये वे लोग हैं, जो भूखे रहकर भी अपनी अन्तरात्मा को बचाये हुए हैं। ये बहुत कठिन लोग हैं। बार-बार धूल से उठकर खड़े हो जाते हैं। **(बेचैन टहलता है)**

वज्र : इस बार अग्नि भी उनके साथ हैं।.... जब भी हमारे शिविरों में भोजन की सुगन्धि उठती है, वे टूट पड़ते हैं। और मारे जाते हैं। हम सोचते हैं, अब वे कभी नहीं आयेंगे। लेकिन तभी अचानक वे फिर प्रकट हो जाते हैं। वे हर जगह हैं वृत्रहन्ता !.... और कहीं नहीं हैं। उनके साथ अग्नि हैं। वे सभी कुछ देख लेते हैं। और हमें बार-बार चौंधा लग जाता है....

इन्द्र : **(क्रोध और व्यंग से)** तो तुम भी एक अग्निशिखा प्रज्वलित करो और घने जंगलों में भाग जाओ....

वज्र : **(अप्रतिभ होते हुए)** क्षमा करें देवराज !

इन्द्र : **(प्रकोष्ठ के कोने तक जाता है और सोमरस भरता है। घूमकर घूंट लेते हुए...)** मैं ब्रह्माण्डों का शासक हूं। इतनी छोटी पृथिवी को नष्ट करना तो बायें हाथ का खेल है।.... सिर्फ देवलोक बचना चाहिए....सिर्फ अमरावती....। **(सोमरस होठों तक ले जाते हुए अचानक रुक जाता है। वज्र को घूरने लगता है)** वसिष्ठ कहां है ? **(एकाएक चषक घुमाकर फेंक देता है। वज्र के पास जाता है)** कहां है मेरा सबसे दुर्दान्त शत्रु ? **(वज्र को पकड़कर झकझोरने लगता है। फिर हांफता हुआ हट जाता है....)** इसीलिये तुम अपनी असफलताओं को ज्ञान की भेड़िया-खाल से ढंक रहे थे .... **(पास आकर)** क्यों नहीं कहते कि वसिष्ठ भाग गया। वही है—तुम जानते हो, वही काला ब्राह्मण है, जिसकी वजह से आज देवलोक भी सुरक्षित नहीं है। उसी की अभिशप्त छाया चारों ओर मंडरा रही है। वही है, जिसकी वजह से अमरावती में भी लोग सोचते कुछ और.... और बोलते कुछ और

हैं। किसी को मेरे ऊपर विश्वास नहीं रह गया है। कोई मेरी सत्ता स्वीकार नहीं करता। सभी नाटक करते हैं.... **(आंखों में उंगली दिखाते हुए)** .... तुम भी.... शायद तुम भी....

वज्र : ऐसा न कहें देवेन्द्र.... ऐसा न कहें।

इन्द्र : क्यों न कहूं ? **(व्यंग से आंखों में घूरते हुए)** तुम भी तो आज दण्ड के लिये प्रस्तुत नहीं हो .... जैसे उस दिन थे। उस दिन.... जब तुम्हारी सारी गर्जन-तर्जन के बावजूद वह पुरूरवा के साथ अग्नि और उर्वशी को लेकर, अमरावती की गलियों में देवताओं का अभिनन्दन ग्रहण करता हुआ, निरापद चला गया !

वज्र : **(आंखें नीची किये हुए)** मैं आज भी दण्ड के लिये प्रस्तुत हूं प्रभु !

इन्द्र : **(मौन, टहलता है। रुककर.... कुछ पलों बाद। वज्र का कन्धा थपथपाते हुए। हिकारत से हंसते हुए)** अच्छा.... तो तुम दण्ड के लिये प्रस्तुत हो ?

वज्र : (आतंकित) प्रस्तुत हूं देव !

इन्द्र : तो मैं तुम्हें दण्ड देता हूं। **(वज्र जड़ बना खड़ा है)** जाओ.... देखो तो हमारा लाड़ला विश्वावसु सुरक्षित है अथवा नहीं। उसे आजकल चारों ओर शत्रु दिखाई देने लगे हैं....

प्रहरी का प्रवेश।

प्रहरी : देवाधिदेव इन्द्र की जय हो, द्वार पर दो ग्रामवासी उपस्थित हैं।

इन्द्र : **(भौंहें सिकोड़ता है)** ग्रामवासियों से मुझे क्या काम ?

प्रहरी : वे आपके दर्शन करना चाहते हैं प्रभु !

इन्द्र : क्यों वज्र.... देखो तो। **(प्रहरी के साथ वज्र का प्रस्थान। इन्द्र-स्वागत)** पृथिवी पर उतरो तो ग्रामवासी दर्शन करना चाहते हैं.... **(हंसता है। वज्र के साथ दो लम्बे-तड़ंगे ग्रामवासियों का प्रवेश)**

ग्रामवासी : **(एक पोथी इन्द्र की ओर बढ़ाते हैं)** हमारे बादलों के देवता की जय हो।

इन्द्र पोथी को देखकर चौंकता है। उलट-पुलटकर देखता है। उसकी उंगलियां कांपती हैं और अचानक पोथी उसके हाथों से छूटकर गिर जाती है। वज्र उठाकर पुनः इन्द्र को पकड़ाता है। इन्द्र तेजी से उसके पन्ने पलटता है। जैसे हताश, थका हुआ-सा आसन की ओर बढ़ता है और धम्म से बैठ जाता है। आंखें बन्द करके जैसे सुस्ताता है। फिर धीरे-धीरे आंखें खोलता है और जिज्ञासा के स्वर में बोलता है....।

इन्द्र : कौन हो तुम लोग ?

ग्रामवासी : हम आपकी दया के पात्र हैं देवता !

इन्द्र : यह पोथी तुम्हें कहां से मिली ?

ग्रामवासी : पेड़ पर बादलदेव !

इन्द्र : पेड़ पर ?

ग्रामवासी : चिड़िया के खोंते में राजा !

इन्द्र : चिड़िया के खोंते में ? खोंते में यानी घोंसले में ? **(ग्रामवासी सिर हिलाते हैं)** चिड़िया के घोंसले में ? क्या बात है ! देखो वज्र ! हमारा शत्रु कहां-कहां छिपने लगा ?

वज्र : मुझे आज्ञा दें प्रभु !

इन्द्र : हां.... हां जाओ । और देखो, विश्वावसु कहीं चूहे के बिल में तो नहीं छिपा है ।

वज्र का सिर नवाकर प्रस्थान

ग्रामवासी : **(उत्साह से)** बड़ा गझिन अन्हार था बादल-राजा ! हाथ को हाथ नहीं सूझे था । ग्यारह दिन और बारह रातें ! हम उस छतनार पेड़ पर टंगे रहे । आपके कोप से सूरज भी न उगे । धुंआंधार बरखा और आंधी-तूफान होड़ाहोड़ी मचावें । जंगल सिर धुनें और बड़े-बड़े रुक्ख अरराकर गिरें ।.... ग्यारह दिन और बारह रातें ! फिर वो सन्नाटा भया, वो सन्नाटा भया कि पत्ता भी टूटकर गिरे तो अन्तर कांप जाय । तभी महाराज.... तभी वो अजूबा दिखाई दिया....

इन्द्र : **(मजा लेते हुए)** अजूबा दिखाई दिया ?

ग्रामवासी : अचानक हमारे पेड़ के नीचे जंगली घोड़े दिखाई दिये । सभी के मोहड़े ऊपर.... और सभी मंतर पढ़ें....

इन्द्र : मंत्र पढ़ रहे थे ?

ग्रामवासी : हां महाराज !

इन्द्र : क्या मंत्र पढ़ रहे थे ?

ग्रामवासी : जाप करें देवता ! जाप....

इन्द्र : कौन-सा जाप ?

ग्रामवासी : 'मौत के साथियो ! मौत के साथियो !'

इन्द्र : **(चौंकता है)** मौत के साथियो ?

ग्रामवासी : हां.... हां इन्दर देव !

इन्द्र : तब ?

ग्रामवासी : फिर सूंड़ उठाये हाथियों का झुण्ड आया । वो भी जपें.... 'मौत के साथियो.... मौत के साथियो ।' फिर भेड़ियों का झुण्ड आया । फिर नीलगायों का । हिरनों का । काले भालुओं का । फिर बबर शेर आये । वही धुन 'मौत के साथियो.... मौत के साथियो ।' रातों को सारे पहाड़ों से वही धुन उठे.... 'मौत के साथियो.... मौत के साथियो....।' जैसे कोहरा उठे है.... जैसे खपरैलों से धुंआं रिसे है । बारहवें दिन बादल देव का कोप थमा । थमा तो सूरज उगा । सूरज उगा तो हमने देखा....हमारा पेड़ सही– सलामत । हमारे हाथ- पांव सही-सलामत.... । तभी एक अउर अजूबा घटा महाराज !

इन्द्र : और अजूबा ?

ग्रामवासी : हमारे छतनार पेड़ की सबसे ऊंची डाल पर एक खोंता था । सूरज उगा तो खोंते में से आवाज आयी । – एक बच्चे की आवाज.... **(दोनों बच्चे**

की आवाज का नाट्य करते हुए) 'मैं यहां हूं.... मैं यहां हूं।' हम लोग तो महाराज.... डर के मारे गिरते-गिरते बचे। तभी फिर आवाज आयी.... 'मेरे पास आओ, मैं यहां हूं....।' फिर आयी। फिर बार-बार आयी। हमने सोचा, खोंते में जरूर कोई बच्चा है। बिचारे को चील उठा लायी है। हिम्मत करके हम उस ऊंची डाल पर चढ़े। चढ़े तो देखा। क्या देखा ? कि गरुड़ के अण्डे सेंकती ये पोथी है। सो हम उठा लाये इन्दर देव ! उठा लाये.... और ग्यारह दिन, बारह रातें चलकर हम पहुंचे अपने बादल-देव के पास....

इन्द्र : **(उठता है। घूरता हुआ दोनों की तरफ बढ़ता है। दोनों डर के मारे....पीछे हटते हैं)** तो तुम्हें यह चिड़िया के खोंते में मिली ?

ग्रामवासी : हां महाराज।

इन्द्र : **(डांटते हुए)** बताओ.... वसिष्ठ कहां है ? **(दोनों कातर भाव से 'नहीं-नहीं' का नाट्य करते इधर-उधर पीछे हटते हैं)** बताओ....

ग्रामवासी : अब हम का जानें....

इन्द्र : **(चीखता हुआ)** प्रहरी ! **(प्रहरी का प्रवेश)** ले जाओ इन दोनों को और कह दो वज्र से.... समझे ? **(प्रहरी स्वीकार में सिर हिलाता है। दोनों को धकेलता हुआ बाहर ले जाता है। इन्द्र क्रोध में अकेले टहलता हुआ पोथी को उलटता-पुलटता है। एक जगह पढ़ता है)** "चीत्कार, हत्या, आहत-विजड़ित नेत्र, गर्जन, कौंध, अन्धत्व-अन्धकार ...." **(पोथी बन्द कर देता है)**.... तुम मेरे कुकर्मों का कच्चा चिट्ठा मेरे पास भेज रहे हो ? तुम.... मेरे दुर्दान्त शत्रु ! तुम्हें मैं छोड़ूंगा नहीं। तुम कहीं भी हो ....पृथिवी के किसी भी छोर पर....ब्रह्माण्ड के किसी भी तलघर में....मैं तुम्हें समाप्त कर दूंगा। **(चीखता हुआ)** प्रहरी ! **(प्रहरी का प्रवेश)** देखो, देवर्षि नारद कहां हैं ? **(प्रहरी का प्रस्थान। पोथी फिर पलटता है। पढ़ता है)**...."और एक हिरनी के गर्भ को फाड़कर निकलता हुआ, सुनहरी अयालों वाला सिंह....?" हा.... हा.... हा.... हा **(एक तीव्र सन्निपातग्रस्त हंसी हंसता है। कई ढंग से, कई आवाजों में—मोटी, पतली, दम्भपूर्ण, गर्जनापूर्ण और मिमियाती हुई कारुणिक.... काफी देर तक। फिर आंखें निकालकर दर्शकों को घूरता है)** तुम्हारा सुनहरी अयालों वाला सिंह हमने धर लिया है वसिष्ठ....! **(ऊपर की ओर देखता हुआ)** तुम्हारी नाभि हमने फाड़ दी है। जब गरुड़ के पंखों पर बैठाकर हम उसे स्वर्ग ले जायेंगे तो उसकी रक्तिम सुगन्धि सन्ध्या के लाल बादलों में सूंघना तुम....। तुम्हारी नाभि की दुखन कम हो जायेगी....

नारद का प्रवेश।

नारद : महान मघवा सुख से तो हैं.... ?

इन्द्र : सुख से तो हैं.... सुख से तो हैं.... **(पोथी को जमीन पर पटक देता है। नारद अपनी वीणा एक ओर रखता है। फिर जमीन पर पड़ी हुई**

पोथी उठाता है । पलटता है । मुस्कुराता है । फिर पोथी को संभालकर सलीके से एक छोटे से आसन पर रख देता है । इन्द्र उसकी इस हरकत को पलटकर गौर से देखता है । फिर एकाएक आकाश की ओर चेहरा उठाकर....) घबराओ मत ऋषि-प्रवर ! हम पुरूरवा को प्रजापति बनाकर संस्थापित कर रहे हैं । हम प्रजापति का पुनर्सृजन कर रहे हैं ....

नारद : आप प्रजापति का पुनर्सृजन नहीं कर रहे हैं देवराज !

इन्द्र : **(क्रोध से)** फिर ? फिर हम क्या कर रहे हैं ?

नारद : मेरे सामने इस ढोंग की क्या जरूरत है ! **(इन्द्र क्रोध में आगे बढ़ता है और नारद की आंखों में घूरने लगता है । नारद अविचलित)** आप अपने सबसे घातक शत्रु का हनन कर रहे हैं ।

इन्द्र : क्या ?

नारद : आप पुरूरवा का वध कर रहे हैं....

इन्द्र : तो ?.... तो ?

नारद : लेकिन मैं तो कुछ और ही कहने जा रहा था । **(इन्द्र उत्सुक)** आप पुरूरवा का वध नहीं कर रहे हैं । **(इन्द्र चौंकता है । नारद मुस्कुराता है)** आप पुरूरवा का पुनर्सृजन कर रहे हैं । आप जिसे नष्ट करने पर तुले हुए हैं उसी का निर्माण कर रहे हैं....

इन्द्र : **(टहलता हुआ)** आप फिर पहेलियां बुझाने लगे....

नारद : **(पास जाकर कन्धे पर हाथ रखते हुए)** देवराज ! पुरूरवा सिर्फ कर्म ही नहीं है । पुरूरवा एक विचार भी है । आप कर्म को नष्ट कर रहे हैं लेकिन विचार को सहस्त्रगुना वेग से पुनर्उज्जीवित कर रहे हैं....

इन्द्र : **(हाथ झटकता हुआ घूमकर पीड़ा-भरे स्वर में)** क्या कर सकता हूं मैं ?.... कोई रास्ता है ? **(रुककर)** फिलहाल मैं कर्म को नष्ट कर दूंगा ... जनता की स्मृति बहुत क्षणिक होती है । लोग भूल जायेंगे....

नारद : लोग नहीं भूलेंगे राजन् ! जनता की स्मृति में घटनाएं छनकर आती हैं । फिर वे अपना एक निश्चित रूप ग्रहण करती हैं ।.... और फिर प्रहार करती हैं ।... जनता भूलती नहीं.... जनता की स्मृति को ध्वस्त करना पड़ता है....

इन्द्र : **(तेजी से घूमकर)** वह कैसे ?

नारद : **(हंसता है)** आखिर ये महान ऋषि किस दिन काम आयेंगे । वे इसमें सिद्धहस्त हैं । और वे आपके ऋणी भी हैं । **(इन्द्र ध्यान से नारद को देखता है)** आपने उनकी जीवन-पद्धति की रक्षा की है । आपने यज्ञों का पुनः समावर्त्तन किया है....

इन्द्र : **(अविश्वास और निराशा में)** ऋषि-कुल बेकार हैं....

नारद : बेकार नहीं हैं पुरन्दर ! सिर्फ वही कर सकते हैं । वे तर्क को पूरी तरह उलट सकते हैं । वे असत्य की रचना में बेजोड़ हैं । पुरूरवा का वध हो जाने दीजिए । लेकिन अपनी पोथियों में वे पुरूरवा को जीवित रखेंगे । वे पुरूरवा से पाश्चाताप भी करवा सकते हैं । वे आपके प्रति उसकी

अखण्ड स्वामिभक्ति भी दिखा देंगे। वे उसे गन्धर्व-योनि में परिणत भी कर सकते हैं। उन्हें लिखने दीजिए कि उर्वशी को लेकर पुरूरवा पहाड़ों में भाग गया ।.... वे उसके कर्म, कर्त्तृत्व.... विचार–सभी कुछ को उलट देंगे। उन्हें ये काम सौंप दीजिए देवेन्द्र....और निश्चिन्त हो जाइए। वही हैं, जो जनता की स्मृति में कुछ- का-कुछ डाल सकते हैं....

इन्द्र : यह झूठ खुल भी तो सकता है....

नारद : जैसे आप अभी तक सच के लिये ही तो लड़ते रहे हैं।.... और झूठ जब खुलेगा तब खुलेगा, अभी तो आपद्धर्म है....

इन्द्र : **(जैसे पस्त होकर)** फिर कोई वसिष्ठ पैदा हो जायेगा और जनता की स्मृति को धार देने लगेगा....

नारद : वह बाहर से पैदा नहीं होगा राजन् ! जनता की स्मृति में जो सन्देह तत्व है, बीच-बीच में जो एक कौंध बची रहती है– दुःख और संघर्ष की कौंध– वही आकार ग्रहण करती है। वही वसिष्ठ है।

इन्द्र : **(जैसे अनसुनी करता हुआ)** मुझसे तभी चूक हो गयी। मुझे वज्र से कह देना चाहिए था.... इस काले आदमी के काले मस्तिष्क में छेद कर दे। लेकिन मैंने छोड़ दिया.... यह सोचकर कि मैं एक बड़ा आखेट कर रहा हूं– पुरूरवा का आखेट। लेकिन वह भी कहां सम्पन्न हुआ। मैंने कितना प्रयत्न किया ! लेकिन वह देवासुर संग्राम में कहां शामिल हुआ। उल्टे वह यज्ञ-विध्वंस करने लगा। शत्रु को उसने अग्नि से सम्पन्न कर दिया। धृष्ट, परम्परा-भंजक, संस्कृति-विखण्डक उस वन्य पशु ने यह विकट युद्ध ठान दिया.... **(एकाएक नारद की ओर पलटकर)** और इन सबकी जड़ में है वही वसिष्ठ.... जिसे आप जनता की कौंध कहते हैं । **(चीखकर)** हम इस कौंध को बुझा देंगे। हम इस सन्देह-तत्व को कुचल देंगे....। हम लोगों का सोचना बन्द कर देंगे....

नारद : यह सम्भव नहीं है देवराज !

इन्द्र : **(पीड़ा -भरी आवाज में)** फिर क्या सम्भव है ? फिर तो कुछ भी संभव नहीं है। फिर तो सारा रक्तपात व्यर्थ है। **(घूमकर, घुटनों के बल बैठता हुआ। आक्रान्त....। नारद के हाथ पकड़ता हुआ)** देवर्षि ! हम हार रहे हैं। हम धीरे-धीरे खंडहर हो रहे हैं। हम मौत की ओर सरक रहे हैं.... **(दर्शकों की ओर घूमकर.... जैसे सन्निपात-ग्रस्त)....** देखो– देखो, महान इन्द्र बूढ़ा हो रहा है। देवलोक का चेहरा झुर्रियों में सिकुड़ रहा है.... **(तलवार निकालकर हवा में लहराता है और चीखता है.....)** नहीं.... कभी नहीं ..... कभी नहीं....

नारद : **(इन्द्र को पीछे से पकड़ते हुए)** देवेन्द्र ! आप समय को तलवार से नहीं काट सकते.... **(इन्द्र घूमकर देखता है)** लेकिन इस सत्य को झुठलाइए देवराज !.... आप दिग्विजयी हैं ! सोचिये....लोग क्या कहेंगे !

इन्द्र : **(व्यंग से)** हंह् ! दिग्विजयी ! और मैं ?

नारद : हां.... हां.... दिग्विजयी। मैं कहता हूं– दिग्विजयी।

इन्द्र : आप तो कहेंगे ही। **(निढाल सा)** लेकिन हम क्या कर सकते हैं देवर्षि !

नारद : कर सकते हैं।.... और करेंगे। **(इन्द्र उत्सुक)** हम वसिष्ठों को कन्दराओं में.... अंधेरे जंगलों में ढकेलते रहेंगे।

इन्द्र : **(हंसता है)** कब तक ?

नारद : जब तक बन पड़ेगा।

इन्द्र : **(एकाएक क्रोध के आवेग में उठता है और 'यमगाथा' की पोथी उठा लेता है। फिर नारद की ओर देखता है और दीपाधार की ओर बढ़ता है)**.... और इसे तो मैं अभी अग्नि को समर्पित कर देता हूं।

नारद : **(दौड़कर दीपाधार के आगे खड़ा हो जाता है)** देवराज ! आप ब्रह्माण्डों के शासक हैं.... मानव-मन के ब्रह्माण्ड पर आपका शासन नहीं है....

इन्द्र : देवर्षि ! वसिष्ठ ही तो हमारा सबसे बड़ा शत्रु है।

नारद : लेकिन वसिष्ठ को आप इस तरह समाप्त नहीं कर सकते।

इन्द्र : फिर कैसे कर सकते हैं ?

नारद : **(मुस्कुराता है)** सम्मान देकर।

इन्द्र : **(आंखें फाड़कर)** क्या ?

नारद : हांआं.... वसिष्ठ को सम्मान देकर समाप्त कर दीजिए ....

इन्द्र : **(चकित)** कैसे ?

नारद : **('यमगाथा' की पोथी इन्द्र के हाथ से ले लेता है)** इसे उदरस्थ कर लीजिए। इसके प्रभाव को पचा लीजिए....

इन्द्र : आपकी बातों का रहस्य क्या है?

नारद : **(पोथी की ओर इशारा करते हुए)** इसे ऋग्वेद में संकलित करने की अनुमति दीजिए....

इन्द्र : **(हतप्रभ-सा)** यह आप क्या कह रहे हैं महामना !

नारद : मैं जो कहता हूं वही कीजिए वृत्रहन्ता !.... मैंने आपके जघन्यतम कर्मों में आपका साथ दिया है।.... और अभी भी दे रहा हूं ....

सन्नाटा। दोनों एक दूसरे को कुछ देर घूरते रहते हैं। प्रकाश का वृत्त धीरे-धीरे सिमटता हुआ दोनों पर केन्द्रित हो जाता है। फिर दोनों अपनी भुजाएं और सिर ऊपर आकाश की ओर उठाते हैं और चिल्लाते हैं...।

इन्द्र]
नारद] : ध्वंस.... महाध्वंस.... महामेध.... पुरुषमेध !

अन्धकार।



दृश्य-दो

पर्दा खुलने पर मंच सूना। बायीं ओर मंच की गहराई में नौ आसन अर्द्धगोलाकार शैली में रखे हुए हैं और केन्द्र पर एक बड़ा, सजा हुआ आसन सुशोभित है। उसके आगे बांयीं ओर ही पांच वर्गाकार पीढ़े अर्द्धचन्द्राकार रखे हुए हैं। उन पर लाल रंग की गद्दियां बिछी हुई हैं। बायीं ओर ही आसनों से थोड़ा हटकर, आगे एक बड़ा-सा चित्रित कलश रखा हुआ है। कलश में मथानी लगी हुई है। आगे एक और सुघड़ आसन रखा है और आसन के सामने एक छोटी-सी तिपाई रखी है। दाहिने कोने में बांस का एक छोटा-सा चौकोर घेरा बना हुआ है।

नेपथ्य में नगाड़ की 'कड़कड़ धुम्म' सुनाई पड़ रही है। तभी हाथी, घोड़े, सुअर, गवा, ऊंट, बैल, भेड़, कुत्ता और सांप के मुखौटे पहने, राजसी वेषभूषा में सजे नवरत्न फौजी 'मार्च' करते हुए प्रवेश करते हैं। उनके पीछे पांचों पुरोहित— कश्यप, विभावक, होता, उद्गाता, अध्वर्यु उसी तरह 'मार्च' करते हुए प्रवेश करते हैं। सभी मंच की खाली जगह में उसी तरह फौजी 'मार्च' करते हुए एक गोल चक्कर काटते हैं। मुखोशधारी नवरत्न मंच के भीतरी भाग में पीछे जाकर अर्द्धचन्द्राकार खड़े हो जाते हैं। पांचों पुरोहित मंच के अग्रभाग में आकर दर्शकों की ओर मुखातिब होकर 'मार्कटाइम' करते हुए बीच-बीच में झुककर प्रणाम करते हैं। पांचों पुरोहित रक्त-रंग की पगड़ी और वैसा ही लाल वस्त्र आपाद-मस्तक धारण किये हुए हैं। सफेद हिरन की खाल में सिला हुआ, सोने का रुक्म उनके गले से नाभि तक लटक रहा है। सभी के माथे पर लाल रंग का लम्बा टीका त्रिशूल की मुद्रा में अंकित है। दर्शकों को प्रणाम करने के बाद पांचो पुरोहित पांचों पीढ़ों पर जाकर खड़ हो जाते हैं।

तभी दाहिने विंग से बीस-पच्चीस लोग जो सैनिकों के फटे, चिथड़ेनुमा वस्त्र पहने हैं, 'मार्च' करते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं और खाली जगह में पुरोहितों की ओर देखते हुए श्रोताओं की मुद्रा में, चुक्का-मुक्का शैली में बैठ जाते हैं।

पांचों पुरोहित : हम हैं पंचाग्नि साधे पांचों पुरोहित।

विभावक : (हाथ उठाकर) हम हैं विभावक।

कश्यप : (उसी तरह हाथ उठाकर) हम हैं कश्यप।

होता, उद्गाता, अध्वर्यु : हम हैं— होता, उद्गाता, अध्वर्यु।

नवरत्न : **(एक साथ अपने-अपने मुखौश ऊपर उठाकर)** हम हैं नवरत्न।

पांचों पुरोहित : हमको नियुक्त किया मनु-पुत्र राजा नाभाग ने।

नवरत्न : आपको नियुक्त किया महामहिम इन्द्र ने।

भीड़ : हां.... हां नाभाग ने, हां.... हां इन्द्र ने।

विभावक : **(जैसे शून्य को सम्बोधित करता हुआ— भाषण की शैली में)** वर्षों बाद यह शुभ संवत्सर आया है ! यह पावन-पर्व उपस्थित हुआ है ! यह देवताओं का पर्व, आर्य-गणों का पर्व !— पवित्र पुरोहितों का पर्व ! यह– यज्ञों के यज्ञ पुरुषमेध का पर्व ! कवि लोग जिसे कहते हैं— मरण का त्योहार। लेकिन हम— पुरोहित-गण कहते हैं— अमरता का उत्सव। कवि लोग तो अपढ़ और भावुक होते हैं। इसीलिए वे वृक्ष को वृक्ष, धरती को धरती, भूख को भूख और मृत्यु को मृत्यु कहते हैं....

कश्यप : **(चहककर)** वे वस्तुओं और घटनाओं के प्रत्यक्ष के भीतर छिपे सत्य को नहीं देखते....

नवरत्न : **(मुखौश ऊपर उठाकर)** लेकिन हम वृक्ष में मरुस्थल, धरती में आकाश, भूख में उल्लास और मृत्यु में अमरता के दर्शन कर लेते हैं।

भीड़ : **(हाथ उठाकर)** धन्न हैं.... धन्न हैं !

विभावक : इसीलिए इस महामेध को हम पुरोहित-गण कहते हैं— अमरता का उत्सव ? महान ऋषियों ने कहा है— 'यः कामयेत सर्वेषां भूतानां ज्यैष्ठयम्, स्वाराज्यं, आधिपत्यं गच्छेयमिति। एतेन यजेत।' अर्थात् जो सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठता, सर्वोच्चता और सर्वान्त सर्वाधिकार की कामना करता है....

पांचों पुरोहित : **(एक साथ राग बांधकर)** वही इस यज्ञ को करता है....

विभावक : अर्थात् जो यह यज्ञ करता है....

पांचों पुरोहित : **(राग बांधकर)** उसका इस धरती पर कोई शत्रु नहीं रह जाता....

नवरत्न : **(नकल करते हुए-राग में)**अर्थात् यह पृथिवी प्रश्न-रहित हो जाती है....

भीड़ : धन्न हैं.... धन्न हैं !

विभावक : धर्म का आदेश है कि इस यज्ञ को पूरा किया जाय। अतः इस महाव्रत में हम उसे अमर करेंगे जिसने यज्ञों के समग्र विध्वंस का व्रत लिया था। उद्धत और वन्य-पशु पुरूरवा को आप सभी लोग जानते हैं। इसी पुरूरवा ने हमारी सम्पूर्ण जीवन-पद्धति, हमारी सम्पत्ति के स्रोत, हमारे ज्ञान और आनन्द की गंगा— यज्ञों के अमर विधान को समाप्त करने का प्रयत्न किया।.... असुरों और अनार्यों का प्रवक्ता बना। जो हमारे दास थे, जो सदियों से हमारे खेतों और घरों में बिना सिर उठाये काम करते थे.... और जिनके मस्तिष्क में हमने सनातन अन्धकार भर दिया था, उन्हीं अस्पृश्य जातियों को इस दुर्वृत्त ने अग्नि से संयुक्त कर दिया....

कश्यप : हमी हैं, जिन्होंने उसका राज्याभिषेक नहीं किया। हमीं हैं, जो अभिषेक की वेदी से उठ आये थे। क्योंकि पुरूरवा वर्णसंकर है। वह बुध और इला की अवैध सन्तान है। हमीं हैं, जिन्होंने सम्राट नाभाग को बताया।

हमीं हैं, जिन्होंने इन्द्र को सूचना दी – कि वर्णसंकर पुरूरवा–अमानुषों का पक्षधर है । हम न होते....

पांचों पुरोहित : हम न होते तो सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता । सब कुछ बदल जाता....

नवरत्न : क्योंकि अन्त में ब्राह्मण ही संरक्षक है....

विभावक : यही नहीं, मनु-पुत्री इला का पुत्र होने के बावजूद उसने मनु- पुत्र, चक्रवर्ती, सम्राट नरिष्यन्त का वध किया । उसने सम्राटों के सम्राट, ब्रह्माण्डों के शासक, महान इन्द्र को ललकारा । वह देवासुर संग्राम में देवताओं और आर्यों के पक्ष से सम्मिलित नहीं हुआ । उसने महान इन्द्र को पितृहन्ता कहा.... असुर कहा.... विष दिया....

नवरत्न : विष नहीं– कालकूट ।

विभावक : वह इन्द्र की अप्सरा को उठा ले गया । उसने महान मघवा को कठिन मानसिक सन्ताप दिया....

नवरत्न : वह एक वेश्या है– वेश्या....

कश्यप : उसने उस वेश्या से विवाह रचाया । और आज.... उसके पातिव्रत्य के नाटक से सारा त्रिलोक त्रस्त है ।

होता
उद्गाता : ऐसे ही मनुष्यों को ऋषियों ने 'असुरजात्यानुसारिणं,' अर्थात् असुर जाति का अनुसरण करने वाला कहा है....

अध्वर्यु : ऐसे ही मनुष्यों को महर्षि शाण्डिल्य ने पुरुष- पशु कहा है और उनके लिये पुरुषमेध का विधि-कर्म प्रस्तुत किया है....

नवरत्न : **(हाथ उठाकर)** अतः ऐसे व्यक्ति के प्रग्रहण का हमें पूरा अधिकार है ।

विभावक : हम चाहते तो प्रग्रहण के तुरन्त बाद उसका वध कर सकते थे । लेकिन नहीं बन्धुओ, हम हत्यारे नहीं हैं । हम न्याय और धर्म की रक्षा के लिये विधिपूर्वक उसका पुरुषमेध करेंगे....

नवरत्न : यह हत्या नहीं है बन्धुओ.... यह संस्थापना है ।

पांचों पुरोहित : पुरूरवा का सबसे बड़ा अपराध है कि वह ब्राह्मणत्व का शत्रु है । इसलिये ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठतम परम्पराओं के अनुसार हम उसे खत्म कर देंगे.... हम उसे अमर कर देंगे....

नवरत्न : यह हत्या नहीं है बन्धुओ.... यह संस्थापना है ।

पांचों पुरोहित : हम उसका अस्तित्व मिटा देंगे, जिससे ब्राह्मणत्व की रक्षा हो....

नवरत्न : और ब्राह्मणत्व की रक्षा के मानी हैं– न्याय और धर्म की सुरक्षा.... गणों की सुरक्षा, रक्त की पवित्रता की सुरक्षा.... पृथिवी, आकाश.... पर्वत-पाताल की सुरक्षा....

पांचों पुरोहित : क्योंकि ब्राह्मणत्व नहीं बचेगा तो हम नहीं बचेंगे हम नहीं बचेंगे तो कुछ भी नहीं बचेगा । सभी ओर अन्धकार-अन्यत्व राज करेंगे ।.... मनुष्य ही मनुष्यों का भक्षण करेंगे....

विभावक : और कृपया याद रखिये.... ब्राह्मणत्व के माने वसिष्ठ नहीं हैं ।

पांचों पुरोहित : इसीलिए हम कहते हैं– हमारे ऊपर प्रश्नचिन्ह मत लगाओ । यही तुम्हारा सबसे बड़ा अपराध है । यदि तुम नहीं मानोगे तो हम तुम्हें सदा

के लिए अमरत्व में हीरे की तरह जड़ देंगे....

नवरत्न : यह हत्या नहीं है बन्धुओ.... यह संस्थापना है ।

पांचों पुरोहित : यह स्वर्गारोहण है .... यह स्वर्गारोहण है ।

भीड़ : यह स्वर्णारोहण है, यह स्वर्णारोहण है ।

नवरत्न : यह स्वर्गारोहण है ।

विभावक : अब हम आपके सामने इस महान यज्ञ की महिमा बखानते हैं....
(आलोक सिमटकर पुरोहितों और नवरत्नों पर केन्द्रित)

पांचों पुरोहित
नवरत्न : **वह, जो पुरुष प्रजापति था**
वह, जो मर्त्य था अमर्त्य था
वह जो मृत्यु से डरता था
वह जो अमृत से डरता था
वह जो जन-जन था –

जागने और सोने के बीच के अंधेरे में
सृजन प्रारम्भ हुआ उसका ।
प्रारम्भ हुआ गहन उल्लास-भरा समय
प्रारम्भ हुआ भूख का हरा संसार
भीतर और बाहर
उग आये पर्वत-पठार
उदित हुआ दुःख, उगा हाहाकार
अंखुआयी सिंह की अग्रिम दहाड़
तब-
जन-जन का समय प्रारम्भ हुआ ।

वह जो मर्त्य था अमर्त्य था
वह जो मृत्यु से डरता था
वह जो अमृत से डरता था-
उसने शून्य को समेटा

समय को दबोचा
भूख और दमन के विरुद्ध आरम्भ किया
उसने दुर्दान्त संग्राम
कोलाहल अंकुरित किया
अपने ही सृजन- संघर्ष के अंधेरे विस्फोट में
खण्डित-अखण्डित वह
अपने ही सृजन में समा गया
बार-बार ।
वह जो मर्त्य था अमर्त्य था

वह जो जन-जन था
वह जो पुरुष-प्रजापति था।

वह हवा में हवा बन झंझा हुआ
वह जल में जल बन समुद्र हुआ
वह मिट्टी में मिट्टी बन अग्नि हुआ
वह वृक्ष में वृक्ष बन छांह हुआ
वह आंख में आंख बन लहू हुआ
वह सांस में सांस बन कराह हुआ
वह अशब्द में शब्द बन सूर्य हुआ
वह निःस्वर में स्वर बन उल्लास हुआ
वह अनश्वर में नश्वर बन शिशु हुआ—
वह जो मर्त्य था अमर्त्य था
वह जो मृत्यु से डरता था
वह जो अमृत से डरता था
वह जो बार-बार लौटता था
दारुण संग्राम में.... वह
प्रकृति में प्रकृति बन छिप गया

वह जो पुरुष प्रजापति था.... पशु था
वह जो जन-जन था।

हमने उसे पुनः एकत्र किया
हमने उसे हवा से खींच लिया
हमने उसे जल से छान लिया
हमने उसे मिट्टी से अंखुवा लिया
हमने उसे वृक्ष से चूस लिया
हमने उसे आंख से टपका लिया
हमने उसे सांस से खुरच लिया
शब्द से निचोड़ लिया
अर्थ से चुपा दिया
स्वर से उतार लिया....

यों हमने सत्व-सत्व समय-संभोग किया
यों हमने धरती की खलरी उतार ली
यों हमने बूंद-बूंद
रक्त पिया
यों हम सर्वज्ञ हुए

यों हम विराट हुए
यों हमने बार-बार
प्रकृति को प्रकृति से
विच्छिन्न किया
यों हमने बार-बार
पुरुषमेध पूर्ण किया।

श्रोताओं की पूरी भीड़ खड़ी हो जाती है। दर्शकों की ओर उन्मुख होकर प्रणाम करती है। फिर पुरोहितों और नवरत्नों की ओर घूमकर उन्हें भी झुककर प्रणाम करती है। फिर पुरोहितों को सम्बोधित करती है।

भीड़ : हे पुरोहित-गण !
आप ही सर्वज्ञ हैं। आप ही सनातन हैं।
आप ही पृथिवी हैं। आप ही आकाश हैं।
आप ही न्याय हैं। आप ही दण्ड हैं।
हे पुरोहित-गण ! जैसा आपने कहा
वैसा हमने किया....

विभावक : **(अपने आसन से कूदकर आगे आता है। भीड़ से प्रश्न करता है)** क्या किया तुमने ?

भीड़ : उंचास हाथ आठ अंगुल लम्बी
तैंतिस हाथ पांच अंगुल चौड़ी
स्वर्गारोहण को उत्सुक
रक्तपायी गरुड़ की
वेदिका बनायी—
जिसकी सात हाथ सात अंगुल
लम्बी है चोंच। और बाईस हाथ
चार अंगुल लम्बी है गर्दन।

होता
उदगाता
अध्वर्यु : उसे ही कहते हैं श्येनचिति.... सुपर्णचिति
वही है स्वर्गारोहण का पवित्र यान।

नवरत्न : वही है वध का सिद्धान्त-वेद।

विभावक : **(कुछ चिढ़ा हुआ)** हां.... हां....वही है।
वही है, वध की सौन्दर्य-दृष्टि।

कश्यप एकाएक अपने आसन से कूदकर आता है और विभावक की बगल में खड़े होकर उसी मुद्रा में भीड़ से प्रश्न करता है।

कश्यप : कैसे बनायी तुमने रक्तपायी वेदिका ?
कहां से खोदी तुमने मिट्टी

कहां पकायीं तुमने विश्ज्योति ईंटें
कितने उपक्रमों में बनायी तुमने वेदिका
कितने पशुओं की रखी तुमने अस्थियां....?

भीड़ : मानसरोवर से निकाली हमने मिट्टी
जनता की हड्डियों का आंवां बनाया
तब पकायीं हमने विश्वज्योति ईंटें।
पांच उपक्रमों में बनी है वेदिका—
घोड़े की खोपड़ी, हाथी का पांव
कछुए की गर्दन, सुअर का जबड़ा
ऊंट का कोहान
बकरी का खुर
मनुष्य की पसली
बैल का डील
भेड़ की सींग.... और
सांप का फन
बिछाया है पांचों उपक्रम में।

एकाएक होता, उद्गाता, अध्वर्यु अपने पीढ़ों से कूदकर आते हैं और कश्यप-विभावक की बगल में खड़े होकर उसी शैली में प्रश्न करते हैं।

होता
उद्गाता
अध्वर्यु : कैसे बनाया तुमने नौ कोनों वाला
अभिचार का कटोरा ?

नवरत्न : जिससे गरुड़ महाराज
उड़ने के पहले
करते हैं रक्त-पान।

पांचों पुरोहित : जिसे कहते हैं
उखा....

भीड़ : कैलास के पवन-धुले पत्थर से
हमने बनाया— नौ कोनों वाला
अभिचार का कटोरा
जिसे कहते हैं— उखा।

पांचों पुरोहित : **(हाथ झटकते हुए निराशा में)** व्यर्थ हुआ.... सभी कुछ व्यर्थ हुआ।

नवरत्न : बिल्कुल व्यर्थ हुआ।

भीड़ : क्यों भला ? धर्म के विकट संरक्षक-गण !
क्यों भला व्यर्थ हुआ ?

विभावक : क्या तुमने सोने के फावड़े से मिट्टी खोदी थी ?

भीड़ : हां महाराज।

विभावक : **(बिज्जू की तरह आंखें निकालकर देखते हुए)** हां महाराज ?

भीड़ : हां महाराज।

कश्यप : क्या तुमने घोड़े और गधे और बकरे के खुर में सोने की नाल बंधायी थी?

भीड़ : हां महाराज।

पांचों पुरोहित : **(गिद्ध की तरह अपने चेंचू निकालकर एक दूसरे को देखते हैं)** हां महाराज ?

भीड़ : हां महाराज।

होता
उद्गाता
अध्वर्यु : क्या तुमने घोड़े की खोपड़ी, हाथी के पांव
कछुए की गर्दन, ऊंट के कोहान
सुअर के जबड़े, बकरी के खुर
मनुष्य की पसली, बैल के डील
भेड़ की सींग और सांप के फन
में स्वर्ण भरा ?

भीड़ : हां महाराज !

विभावक : क्या तुमने पांचवें उपक्रम में मानव-पशु की ठठरी बिछायी ?

भीड़ : हां महाराज।

कश्यप : क्या तुमने सांस की नली में
आंखों के कोटर में, कानों में
नथुनों में, मुंह में
स्वर्ण भरा ?

भीड़ : हां महाराज।

होता
उद्गाता
अध्वर्यु : क्या तुमने उत्तरवेदी में स्वर्ण-कमल रखा ?

भीड़
पुरोहित
नवरत्न : हां महाराज।

विभावक : और सोने की थाली में
सोने की प्रतिमा
पुरूरवा की ?

भीड़
नवरत्न
पुरोहित : **(पागलों की तरह)** हां महराज
हां-हां महराज
हां-हां महाराज।

विभावक : **(भीड़ के चारों ओर चक्कर काटता हुआ गद्गद)** आहाहा....
आहाहा....तुम्हीं हो स्वर्ण-पंखों वाले
महान विश्वकर्मा.... तुम्हीं हो।

एकाएक नवरत्न अपनी जगह से दौड़कर आते हैं। पांचों पुरोहितों को गले लगाते हैं। फिर उनके हाथ पकड़, अपने चेंचू

और आंखें निकालते हुए गोलाई में नाचने-गाने लगते हैं। भीड़ स्तब्ध, उन्हें देखती है।

नवरत्न पांचों पुरोहित : घोड़े की खोपड़ी में स्वर्ण
हाथी के पांव मे स्वर्ण
कछुए की गर्दन मे स्वर्ण
ऊंट के कोहान मे स्वर्ण
सुअर के जबड़े मे स्वर्ण
बकरी के खुर मे स्वर्ण
बैल के डील मे स्वर्ण
भेड़ की सींग मे स्वर्ण
सांप के फन मे स्वर्ण
सांस की नली मे
कानों में.... नथुनों मे
मुंह मे
आत्मा मे
स्वर्ण....

(हाथ उठाकर आह्लाद से चिल्लाते हुए)

आह ! यह धरती.... आह ! यह धरती कितनी सुन्दर है !

एक झन्नाहट के साथ नृत्य बन्द। एकाएक होता, उद्गाता अध्वर्यु गोले से टूटकर बाहर आते हैं और विभावक से प्रश्न करते हैं।

होता उद्गाता अध्वर्यु : हमे क्या मिलेगा ?

विभावक : **(आश्चर्य से)** क्या ?

होता उद्गाता अध्वर्यु : हमे क्या मिलेगा ?

विभावक : **(सकते में)** चुप।

नवरत्न गोले से हाथ छुड़ाकर अलग हटते हैं और प्रश्न करते हैं।

एक नवरत्न : और हमें ?

विभावक : **(जोर से)** चुप।

दूसरा नवरत्न : और हमें ?

कश्यप : चुप्प।

अन्य नवरत्न : और हमें और हमें और हमें और हमें
और हमें और हमें और हमें ?....

विभावक कश्यप : **(एक साथ जोर से)** चुप्प....
काम करें हम
कुक्कुर बनें हम
ब्रह्मचर्य धरें हम
अफरायें हम
दांत चियारें हम
देस-कुदेस डंड़रायें हम
लात खायें हम
और ये पुच्छें "हमें क्या मिलेगा"
कुच्छ नहीं मिलेगा—
चुप्प।
सेनापति वज्र का प्रवेश। सभी सकते में।

वज्र : इतनी देर क्यों लगा रहे हैं आप लोग ? **(भीड़ पर नजर दौड़ाता है। भीड़ फौजी 'मार्च' करती हुई बाहर जाती है)** जल्दी करिये। वध शीघ्र होना चाहिए। चारों ओर वातावरण में सन्नाहट है। कभी भी कुछ भी हो सकता है। और आप लोग यहां कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ रहे हैं।

विभावक : क्षमा करें सेनापति जी ! हम नादान ब्राह्मण हैं।

वज्र : **(घृणा से)** नादान नहीं हैं.... घिनौने हैं। **(गुस्से भरे आदेश में)** चलिये। अपना यह महान यज्ञ शीघ्र समाप्त कीजिए। **(नवरत्नों से)** और आप लोगों की जगह वहीं है ?
नवरत्न फौजी 'मार्च' करते हुए बाहर जाते हैं। वज्र का प्रस्थान। पांचों पुरोहित अपने पीढ़ों पर जाकर पाल्थी मारकर बैठ जाते हैं और राग बांधकर नकियाते हुए बोलते हैं।

पांचों पुरोहित : महाराजाधिराज.... मनु- पुत्र नाभाग को बुलाइए....
सम्राट नाभाग का एक-एक कदम फौजी 'मार्च' की मुद्रा में प्रवेश। पीछे-पीछे उसी मुद्रा में नवरत्नों का प्रवेश। नवरत्न पीछे जाकर पूर्ववत् खड़े हो जाते हैं। नाभाग आगे रखे हुए आसन पर बैठता है।

होता
उद्गाता
अध्वर्यु : हमने हवन-कुण्ड का निर्माण किया
हमने विश्वज्योति ईंटों से
रक्तपायी गरुड़-वेदी तैयार की
उखा में रक्त अवतरित हुआ।
हमने त्रेताग्नियों को जगाया
पूरी हुई धरती की अग्नि -परिक्रमा
बुझी हुई यज्ञों की अग्नि प्रज्वलित हुई
हवन अनन्त हुआ
ब्राह्मण को 'बलि' और 'भाग' मिले

देवोत्थान हुआ
सृष्टि शत्रु-रहित हुई
अग्निचयन पूर्ण हुआ।
खूंटे गाड़ लिये
वध-गृह तैयार हुआ
आज्ञा दें महाराज.... अब
संस्थापन हो।

नाभाग : **(इशारे से पुरोहितों को बुलाता है । विभावक अपने आसन से कूदकर आता है)** कितने खूंटे गाड़े गये ?

विभावक : शाण्डिल्य के अनुसार....

नाभाग : अरे छोड़िये शाण्डिल्य- -फाण्डिल्य....

विभावक : एक सौ चौरासी महाराज !

नाभाग : लेकिन बन्दी तो लाखों में हैं।

विभावक : उसका विधान है प्रभु !

नाभाग : क्या विधान है ?

विभावक : जिनका वध नहीं करना होगा उनकी हम अग्नि- परिक्रमा करेंगे । फिर उन्हें उत्तर दिशा में ले जाकर छोड़ देंगे । जिनका वध करना होगा उनकी परिक्रमा नहीं होगी।

नाभाग : **(चिढ़कर)** किसी को उत्तर दिशा नहीं जाना है । सभी दक्षिण दिशा जायेंगे। सभी का वध होगा।

विभावक चुप । तभी अध्वर्यु लपककर आगे आता है ।

अध्वर्यु : उसका भी विधान है राजन् !

नाभाग : उसका भी विधान है ?

अध्वर्यु : **(मुस्कुराता है)** हां मनु- पुत्र ! उसका विधान है– एक महाप्रयाग । प्रतिष्ठान के उस पार.... जहां पवित्र गंगा-जमुना का संगम है– वहीं एक विशाल अग्नि-कुण्ड.... एक सार्वजनिक हत्या-गृह का निर्माण । एक सौ चौरासी के बाद जितने भी बन्दी हैं उन्हें उसी महाप्रयाग में शाकल्य के रूप में डाल दीजिए।

नाभाग : **(प्रसन्न होकर)** वाह ! क्या विधान है ! **अध्वर्यु हाथ जोड़ता हुआ पीछे हटता है । उसी के साथ विभावक भी । दोनों अपने आसन पर पुनः लौटते हैं ।**

होता, उद्गाता, अध्वर्यु : आज्ञा दें महाराज.... अब
संस्थापन हो।

नाभाग : **(हाथ उठाकर)** आज्ञा है। **(जंभाई लेता है)**

पांचों पुरोहित : **(आवाहन शैली में)** हम एक हजार गौवें और एक सौ घोड़े किसे प्रदान करें ?

सभी नेपथ्य की ओर देखते हैं । फिर एक दूसरे का मुंह ताकते हैं । कोई प्रस्तुत नहीं होता । नगाड़े की धुन बजती है । नाभाग

आंखें मूंद लेता है । विभावक पुरोहितों का प्रश्न फिर दुहराता है ।

विभावक : हम एक हजार गौवें और एक सौ घोड़े किसे प्रदान करें ? **विंग से एक लम्बा कृष्ण-वर्ण किसान प्रगट होता है ।**

किसान : **(हाथ फैलाकर झुकते हुए)** मुझे महाराज ।

पुरोहित स्तब्ध हो जाते हैं । नवरत्न आपस में बुड़बुड़ाते हैं । नाभाग पसरकर सो रहा है ।

कश्यप : तू ?.... तू कौन है ?

किसान : देख तो रहे हैं, मैं कौन हूं ।

कश्यप : धृष्ट.... दुर्विनीत ।

विभावक : तुम पुरुषमेध के लिये किसे अर्पित करोगे ?

किसान : अपने को, **(झुकता है.... तनता है)** अपने को ।

विभावक : **(दुविधाग्रस्त । सम्राट नाभाग की ओर देखता है)** .... महाराज तो सो रहे हैं ।

अध्वर्यु : **(लपककर आता है । जगाता है)** महाराज ! महाराज !

नाभाग : **(चिहुंककर)**.... एं.... **(खड़ा हो जाता है)** क्या हुआ ? **(जंभाई लेता है)**

अध्वर्यु : यह अपने को पुरुषमेध के लिये अर्पित करना चाहता है प्रभु !

नाभाग : **(चौंकता है)** .... पुरुषमेध के लिये ?.... पागल है ।

विभावक : क्या करें प्रभु !

नाभाग : **(आंखें खोलता है । किसान को ध्यान से देखता है । पुरोहितों से)**.... अच्छा हांका लगाते हैं आप लोग.... कस्तूरी मृग की जगह भेड़िये निकल आते हैं । **(किसान से)** क्यों भई.... तुम्हें मृत्यु से डर नहीं लगता ?

किसान : आप यह क्यों पूछ रहे हैं । आपने बुलाया है और मैं प्रस्तुत हूं ।

नाभाग : **(चीखता हुआ)** राजद्रोही.... कुलद्रोही.... पामर.... चाण्डाल ! **(प्रहरियों से)** ले जाओ इसे और वध-स्थल के दक्षिण ओर खूंटे से बांध दो । **(प्रहरी ले जाते हैं । नाभाग-पुरोहितों से)** चलिये.... आगे बढ़िये ।

पांचों पुरोहित : हम एक हजार गौवें और एक सौ घोड़े किसे प्रदान करें ?

नेपथ्य में कोलाहल । एकाएक विंग से दस- पन्द्रह लोग दौड़ते हुए मंच पर आते हैं । पुरोहित और नाभाग घबरा जाते हैं ।

लोग : **(हाथ फैलाकर झुकते हुए)** हमें महाराज ! हमें ।

विभावक : कौन हो तुम लोग ?

लोग : आपकी दरिद्र प्रजा हैं देवता !

कश्यप : तुम लोग पुरुषमेध के लिए किसे अर्पित करोगे ?

लोग : अपने को ।.... अपने को ।

नाभाग : क्यों अर्पित करोगे ?

लोग : हमारा परिवार तो सुख से रहेगा । ऐसे तो हम सभी मर रहे हैं....

नाभाग : **(चिढ़कर)** ले जाओ इन्हें और खूंटे से बांध दो **(प्रहरी ले जाते हैं ।**

नाभाग-पुरोहितों से) बन्द करिये अब। मुझे कब से नींद आ रही है। और आप लोग हैं कि यह ढोंग चलाये जा रहे हैं.... चलाये जा रहे हैं!

नवरत्न : ढोंग आवश्यक है महाराज!

विभावक : सुनिये, सुनिये.... महाराज अब मुकुट धारण करेंगे....

नाभाग : **(विभावक को घूरता है। अपना मुकुट स्पर्श करता है)** मुकुट तो मेरे माथे पर है।

कश्यप : वह तो आपका मुकुट है देव!

अध्वर्यु : आप सम्राट पुरूरवा का मुकुट उतारेंगे और अपने सिर पर धारण करेंगे।

होता : तभी आप चक्रवर्ती होंगे।

उद्गाता : तभी यह यज्ञ पूरा होगा।

नाभाग : **(चकरा जाता है)** पुरूरवा का मुकुट ?... लेकिन....

विभावक : ठहरिये महाराज....

विभावक बाहर की ओर भागता है। सभी उत्सुकता से बाहर देखने लगते हैं। तभी विभावक बाहर से एक फटेहाल, दुबले-पतले आदमी को ढकेलता हुआ मंच पर लाता है। कश्यप दौड़कर उसके पास जाता है। दोनों मिलकर उस आदमी को सीधा खड़ा करते हैं। आदमी कांपता हुआ, हाथ जोड़ खड़ा रहता है।

कश्यप : सीधे खड़े रहो।.... हिले तो गर्दन उतार लूंगा।

आदमी : मेरा कोई अपराध नहीं कृपानिधान! मैंने कुछ नहीं किया....। मुझे बचाइए महाराज!

कश्यप : हिले तो गर्दन उतार लूंगा।

विभावक लपककर सम्राट नाभाग के सिर से उसका मुकुट उतार लेता है। नाभाग आश्चर्य और चिढ़ से देखता है। विभावक उस आदमी को मुकुट पहनाता है। फिर दूर हटकर अगल-बगल से निहारता है।

विभावक : ठीक.... बिल्कुल ठीक।

आदमी : मेरे साथ यह क्या हो रहा है दीनानाथ!.... यह क्या हो रहा है ?

कश्यप : **(एक झापड़ मारता है)** .... सीधे खड़े रहते हो कि नहीं। **(पीछे से जाकर पकड़ लेता है)**

आदमी : मैं एक दरिद्र किसान हूं कृपानिधान! ये लोग मेरी गइआ खोल लाये। मैं गुहार लगाने आया था.... और इन्होंने उल्टे धर लिया। मैंने कुछ नहीं किया दीनबन्धु!

विभावक : **(नाभाग से)** आइए महाराज! सम्राट पुरूरवा के सिर से मुकुट उतारिये।

सभी चकित। नाभाग हिचकिचाता है।

कश्यप : **(आदमी को पकड़े हुए.... झांक कर)** जल्दी कीजिये महराज! नहीं यह गिर जायेगा।

नाभाग आगे बढ़ता है। आदमी के सिर से मुकुट उतारकर पहनता है। मुकुट उतरते ही कश्यप और विभावक उस आदमी

को ढकेलकर गिरा देते हैं ।

**विभावक
कश्यप** : **(धूंसते हुए)** गिर.... महाराज के चरणों में साष्टांग दण्डवत कर।

मुंह के बल लेटा हुआ आदमी भयाक्रान्त भाव से अपना सिर उठाकर पुरोहितों को देखता है । कश्यप उसके बाल पकड़कर झंझोड़ता है और फिर नाभाग के चरणों में पटक देता है । विभावक उसके पैर पकड़कर फैलाते हुए साष्टांग की मुद्रा में पसरा देता है ।

नवरत्न : इसी तरह.... इसी तरह सम्राट पुरूरवा भूमिसात् हुए।

नवरत्न और पांचों पुरोहित मिलकर 'सम्राट नाभाग की जय' बोलते हैं । फिर कश्यप और विभावक मिलकर उस आदमी को हुलकारते हैं । आदमी कभी इधर कभी उधर डरा हुआ भागता है फिर तेजी से बाहर की ओर भागता है । सभी ठहाका मार कर हंसते हैं ।

विभावक : सुनिये.... सुनिये.... देवताओं के प्रिय, आर्यश्रेष्ठ, मनु-पुत्र, सम्राट नाभाग अब प्रजा-मन्थन करेंगे।

नाभाग : **(चौंकता है)** प्रजा-मन्थन ?—

विभावक : **(चिरौरी की मुद्रा में)** बस महाराज.... अब हो गया।

नवरत्न फौजी 'मार्च' करते हुए नाभाग के पास आते हैं । फिर नाभाग और नवरत्न 'मार्च' करते हुए एक बार मंच का चक्कर लगाते हैं । नाभाग आगे बढ़कर कलश की मथानी का बेंट पकड़ लेता है । नवरत्न उसकी कमर पकड़े एक के पीछे एक थोड़ा झुककर खड़े हो जाते हैं । पुरोहित प्रजा-मन्थन का प्रश्न करते हैं । नाभाग मथानी चलाता है । वह और नवरत्न मिलकर पुरोहित के प्रश्नों का जवाब देते हैं ।

पांचों पुरोहित : महाराज ! यजमान् ! धीमान् ! श्रीमान् !
किसे मथ रहे हैं आप ?
किसे मथ रहे हैं आप ?

**नाभाग
नवरत्न** : आत्म को अनात्म को
अन्त को अनन्त को
मृत्यु सर्वनाश को
हवा को बादल को
पर्वत-पठार को
प्रजा को.... प्रजा को.... प्रजा को....

पांचों पुरोहित : महाराज ! यजमान् ! धीमान् ! श्रीमान् !

कौन-सा रतन-धन पायेंगे आप
कौन-सा रतन-धन पायेंगे ?

नाभाग
नवरत्न : एकछत्र, एकराट्, आसमुद्रान्त राज्य
पायेंगे हम....
हम पायेंगे।

पांचों पुरोहित : उसमें क्या होगा ? महाराज ! यजमान् ! श्रीमान् !
क्या होगा उस साम्राज्य में ?

नाभाग
नवरत्न : पृथिवी की ठठरी.... पर्वत कंकाल
चिमाट गये जंगल, ऊसर-पठार
और आत्महीन जनों का
निहत्था संसार।

पांचों पुरोहित : साधु यजमान् ! साधु श्रीमान् ! साधु.... साधु....
महाराज ! यजमान् ! श्रीमान् !
इन्द्र को क्या देंगे
क्या देंगे इन्द्र को ?

नाभाग
नवरत्न : अचल स्वामिभक्ति....
अटल दासत्व।

पांचों पुरोहित : प्रजा को क्या देंगे
प्रजा को ?

नाभाग
नवरत्न : क्षय दुर्निवार
मरण-त्योहार।

पांचों पुरोहित : ब्राह्मण पुरोहित को क्या देंगे
ब्राह्मण पुरोहित को ?

नाभाग
नवरत्न : स्वर्ण, धन-धान्य रत्न-सौध
अक्षत- यौवना कन्याओं का हार।

पांचों पुरोहित : साधु यजमान् ! साधु श्रीमान् !
साधु.... साधु।
पांचों पुरोहित तालियां बजाते हैं। उनके साथ ही नाभाग और नवरत्न भी तालियां बजाते हैं।

विभावक : अब महाराज चक्रवर्ती हुए। कृपया, चक्रवर्ती का आसन ग्रहण करें।
नाभाग और नवरत्न 'मार्च' करते हुए पीछे जाते हैं। नाभाग केन्द्र के बड़े नक्काशीदार आसन पर बैठता है। नवरत्न उसके पीछे

अर्द्धचन्द्राकार शैली में रखे आसनों पर बैठते हैं ।

पांचों पुरोहित : **(राग बांधकर नकियाते हुए)** अब साम्राज्ञी उर्वशी को बुलाइए ।

नाभाग : **(विभावक को इशारे से बुलाता है)**— उर्वशी को किसलिये ?

विभावक : उनका सार्वजनिक श्रृंगार होगा महाराज !

नाभाग : **(प्रसन्न होकर)** अरे वाह ! और उसके बाद वह नाचेगी ।

विभावक : नहीं, महाराज !

तभी दायें विंग से पूर्ण-प्रसाधन में उर्वशी का प्रवेश । सिर पर मुकुट । केशों की छः लम्बी-लम्बी वेणियां बनी हुई । तीन लड़ों की मोतियों की माला, जो एक कान से दूसरे कान तक ठोढ़ी के नीचे से होती हुई अर्द्धचन्द्राकार सुशोभित है । कानों में कर्णफूल, वक्षस्थल पर हार, बाहों पर बाजूबन्द । दाहिने हाथ में स्वर्ण-कमल । उर्वशी के पीछे-पीछे विश्वावसु । प्रवेश करते ही उर्वशी घूमकर सब पर एक नजर डालती है । अचानक झटके से पुरोहित, नाभाग और नवरत्न उठकर खड़े हो जाते हैं । विश्वावसु आसन की तरफ इशारा करता है, लेकिन उर्वशी खड़ी रहती है । सर्वत्र सन्नाटा है ।

उर्वशी : लगता है, आप लोग झुकना भूल गये हैं । साम्राज्ञी को प्रणाम नहीं करेंगे ? **(सभी झुकते हैं और प्रणाम करते हैं । नाभाग भी झुकता है । उर्वशी—नाभाग को लक्ष्य करती हुई)** तुम्हारा असली व्यक्तित्व यही है नाभाग ! लेकिन तुम्हारा दुर्भाग्य है कि इन्द्र ने तुम्हें बैसाखी लगाकर खड़ा कर दिया है । **(नाभाग तनकर खड़ा हो जाता है । उर्वशी हंसती है)** अब देखो, कैसे तुम धरती से आकाश तक कलंक की तरह तन गये ! **(फिर हंसती है)**

विश्वावसु : आसन ग्रहण कीजिये साम्राज्ञी !

उर्वशी : और अगर मैं न बैठूं तो ?.... क्या इन लोगों में इतना साहस है कि ये बैठ जांय ?

विश्वावसु : हम सभी आपके अनुचर हैं स्वामिनी ! **(पुरोहित और नवरत्न एक दूसरे की ओर देखते हैं । नाभाग सिर झुकाये खड़ा है)**

उर्वशी : **(बैठती है । सभी बैठते हैं)** आश्चर्य है ! ये बनैले पशु आराम से जुगाली कर रहे हैं । इसका अर्थ है कि पुरुष-सिंह यहां नहीं हैं । कब आयेंगे वे ? **(विश्वावसु को देखती है)** ....जब भी आयेंगे, मुझे पता चल जायेगा । यहां भगदड़ मच जायेगी । **(पुनः विश्वावसु को देखती है)** कब आयेंगे वे ?

विश्वावसु : **(आस्तीन से अपने आंसू पोंछता हुआ)**अभी तो आपका सार्वजनिक श्रृंगार होगा देवि !

उर्वशी : **(थोड़े आश्चर्य से)** सार्वजनिक श्रृंगार ! वह किसलिये ? **(अपने को निहारती है)**...क्या यातना-गृह की दुखद स्मृतियों को पोंछने के लिये ? क्या मेरे चेहरे से झांइआं मिटाने के लिये ?

विभावक : ऐसा विधान है देवि !

उर्वशी : अच्छा ऽऽ .... हत्यारों का भी कोई विधान होता है ?

नवरत्न : होता है। होता है।

विश्वावसु पीछे और अगल-बगल से घूमकर उर्वशी के केश-विन्यास को देखता है। एक-एक करके छहों वेणियों को उठाकर परखता है। केशों पर हाथ फेरता है। सुबकता है और बीच-बीच में आस्तीन से अपनी आंखें पोंछता जाता है। नाभाग कन्खियों से उर्वशी को देख रहा है। एकाएक उर्वशी की नजर नाभाग पर पड़ती है।

उर्वशी : इस तरह कन्खियों से क्यों देख रहे हो नाभाग ! ठीक से देखो– मुझे सजते हुए। यह अवसर तुम्हें जीवन में फिर कभी नहीं मिलेगा। **(नाभाग आंखें नीची कर लेता है)** लेकिन तुम तो मुझे देख ही नहीं सकते। मैं, जो दुःख का श्रृंगार हूं.... मैं, जो अनहोनी कलाकृति हूं– तुम कैसे देख सकते हो मुझे ! क्योंकि कलाकृतियों को देखने का तुम्हारा संस्कार ही नहीं है।

नाभाग : **(खड़ा हो जाता है। क्रोध से)** बहुत हो चुका....

उर्वशी : बैठ जाओ नरपुंगव ! क्रोध तुम्हें शोभा नहीं देता। क्रोध कैसे किया जाता है.... जब सम्राट पुरूरवा आयेंगे तब देखना .... **(पुरोहितों से)** कहां हैं राजर्षि ? मुझे उनसे मिलने दीजिए।... आपके विधान में आज यह भी तो है।

विभावक : वह विधान तो पूरा हो चुका।

उर्वशी : **(खड़ी हो जाती है)** कैसे ? कैसे ? पिछले एक बरस से तो मैं तलघर में बन्द थी। उस विराट अंधेरे में... बस एक ही जोत थी जो मेरे इर्द-गिर्द दिन-रात जगमग रही। प्रतीक्षा की जोत। कि एक न एक दिन वह दहाड़ मुझे सुनाई पड़ेगी। कि कभी -न -कभी सूर्य की वह नोक उन कठोर शिलाओं को छेदती हुई भीतर कूद पड़ेगी.... । और आप लोग कहते हैं कि वह विधान पूरा हो चुका ?

कश्यप : पूरा हो चुका।

उर्वशी : दुरात्मन् ! आप उस पीढ़े पर कैसे बैठ गये ? आपको साम्राज्ञी से बोलना भी नहीं आता।

नवरत्न : क्षमा करें.... क्षमा करें।

अध्वर्यु : लेकिन महादेवी ! विधान तो सचमुच पूरा हो चुका।

उर्वशी : **(खीझकर)** कैसे पूरा हो चुका ?

विभावक : सम्राट पुरूरवा और साम्राज्ञी उर्वशी की स्वर्ण-प्रतिमाओं ने साथ-साथ एक वर्ष तक सारे अभिचार पूरे किये।

विश्वावसु : आसन ग्रहण करें देवि ?

उर्वशी : **(अवश भाव से बैठती है। स्वगत)** इतिहास में दर्ज हुआ– सम्राट पुरूरवा.... अपनी अनुपम कलाकृति उर्वशी के साथ, एक बरस संग-संग रहे।

नवरत्न : दर्ज हुआ.... दर्ज हुआ
इतिहास में दर्ज हुआ।

विभावक अपने आसन से उठकर खड़ा होता है। दाहिने हाथ से खिलौनों के आकार के छोटे-छोटे अंकुश, त्रिशूल, वाण, गदा, तलवार और फरसे का एक गुच्छा वह विश्वावसु की ओर बढ़ाता है।

विभावक : गन्धर्वराज ! इन अस्त्र-शस्त्रों को आप साम्राज्ञी की छहों वेणियों में गूंथ दें।

विश्वावसु गुच्छा पकड़ता है। उर्वशी– देखती है।

उर्वशी : अद्‌भुत है ! इस वध-शाला में.... आज का मेरा यह सार्वजनिक श्रंगार ! मेरी वेणियों में पुष्पमालाओं की जगह अंकुश, त्रिशूल, वाण, गदा, तलवार और फरसा.... ! मेरी आत्मा में अनाहत प्यार की जगह अनवरत युद्ध का विस्फोट... ! अद्‌भुत है !

विश्वावसु : **(पीछे जाकर वेणियों को परखता है। सिर पकड़कर सीधा करता है)** हां.... हां.... इसी तरह.... इसी तरह।

उर्वशी : **(सिर को झटका देती है। घूमकर विश्वावसु को देखती है)** यह मेरे उत्सवों का अन्त नहीं है गन्धर्व ! यह तो मेरा पीड़ा का प्रारम्भ है।

विश्वावसु : **(आंखें पोंछता हुआ)** अभी हुआ जाता है स्वामिनी ! **(सिर घुमाकर सीधा कर देता है। वेणियों में अस्त्र-शस्त्र गूंथता है)**

उर्वशी : **(हंसती है)** यह शस्त्रागार सिर पर लादे, मैं सारे संसार में फिरूंगी। मेरी पराजय का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि धीरे-धीरे यह मेरी आत्मा में भी उतर रहा है ....। मैं लडूंगी अन्त तक....। मैं छोडूंगी नहीं। मैं अपने बेटे- बेटियों को गुहार लगाऊंगी। यह अकेले-अकेले मेरा प्रश्न तो नहीं है। मैं चीख-चीखकर कहूंगी– देखो, जब मैं इन प्रमत्त विलासियों के आंगन से बाहर आयी, जब मैं अपनी सन्तानों के लिये मुक्त हुई, जब मैंने बैराग लिया, जब मैंने अनहोना प्यार किया.... देखो, देखो.... तब मेरे साथ क्या हुआ !

पांचों पुरोहित : आंखें सूनी हैं।

उर्वशी : **(पलटकर घूरती है। पुरोहित आंखें झुका लेते हैं)** तो आपको भी सूनी आंखें दिखती हैं। कितना स्वर्ण मिला मेरे सार्वजनिक श्रृंगार के लिये ? चेहरा तो आप लोगों का स्वर्ण-विष्ठा में लिथड़ा हुआ है। **(हाथ का स्वर्ण कमल पुरोहितों की ओर फेंकती है)**....इसे भी ग्रहण कीजिए.... ।कई पीढ़ियां आराम से भजन-पूजन करेंगी....

विश्वावसु : **(काजल लेकर आता है)** सिर जरा पीछे को झुकाइए देवि ! **(उंगलियों से आंखें फैलाता है। काजल आंजने को उद्यत। उर्वशी सिर सीधा कर लेती है)**

उर्वशी : यह कौन-सा काजल आंज रहे हो विश्वावसु !.... मेरी आंखों में रक्त-काजल दो।

विश्वावसु : **(आजिजी से)** स्वामिनी....

उर्वशी : **(ढकेल देती है)** अंधेरे का रंग अब मेरे ऊपर नहीं चढ़ता गन्धर्व....
विश्वावसु काजल रख देता है। झुककर अपने उत्तरीय से उर्वशी के दोनों पैर पोंछकर आगे के आसन पर रखता है । आस्तीन से अपनी आंखें पोंछता हुआ सुबकता है । फिर आलते की कटोरी लाता है ।

विश्वावसु : अलक्तक लगा लीजिए स्वामिनी !

उर्वशी : **(जोर से पैरों से ढकेल देती है)**.... किसके रक्त में मेरी एड़ियों को सजा रहा है तू ?

विश्वावसु : मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया देवि !

उर्वशी : हट जा .... मेरे पुत्र के हत्यारे ! .... अब मेरी आंखों के सामने से हट जा....

विश्वावसु : स्वामिनी !... **(इधर-उधर देखता है । टहलता है । फिर पास आता है)** स्वामिनी ! कुमार आयु जीवित हैं । **(नाभाग पलटकर नवरत्नों को देखता है । नवरत्न अपने मुखोश हिलाते हैं । पुरोहित आतंकित)**

उर्वशी : **(व्यंग से)** अच्छा....धर्मपुरुष ! बहुत अच्छा । **(नाभाग से)** अब कौन से नये षड्यन्त्र का प्रारम्भ है चक्रवर्ती कापुरुष ! **(खड़ी हो जाती है)**

विश्वावसु : **(आलते की कटोरी रखता है । अपने आंसू पोंछता है । कुछ निश्चय करता हुआ- सा तनकर खड़ा हो जाता है)**.... स्वामिनी.... मैं ही हूं– इस सारे खेल में.... मैं ही एकमात्र ऐसा घिनौना व्यक्ति हूं जिसने अपना धर्म किसी भी पक्ष से नहीं निभाया । मैं ही हूं, जिसने अपनी गृहस्थी का कबाड़ सुरक्षित रखने के लिए तरह-तरह के समझौते किये । मैं तो न इधर का हूं, न उधर का । पता नहीं, मैं अपने स्वार्थ साधता रहा या दूसरे । हर बार संकट के अवसर पर मेरा निर्णय गड़बड़ा गया । मुझसे वही हुआ जो मैं करना चाहता था, या कुछ दूसरा हो गया .... यह आज समझ में नहीं आता । मैं सोचता था, यही सच है, यही करणीय है, यही मेरा धर्म है.... लेकिन हर बार किसी- न-किसी बिन्दु से गलत साबित हो गया । धर्म-अधर्म, करणीय- अकरणीय.... सच और झूठ में फर्क करना हर बार मेरे लिये असम्भव हो गया । और इसके बाद हर बार बचता था– केवल स्वार्थ....बचती थी केवल धूर्तता.... चिड़चिड़ाहट.... थकान.... । लेकिन अब.... इस मवाद में मेरी आत्मा बिलबिला रही है । मेरा निर्णय और अनिर्णय, मेरा सच और झूठ– दोनों ही बिलबिला रहे हैं । अब असह्य है....असह्य । **(पलटकर)** अतः इन धर्म के संरक्षकों, सम्राट नाभाग और इन महान नवरत्नों की साखी देकर मैं मुक्त होता हूं । मैं अपने जीवन का पहला और अन्तिम सच बोलता हूं.... **(जोर से)** आपके पुत्र आयु जीवित हैं ।

उर्वशी : **(आश्चर्य और दुःख से आंखें फाड़े हुए)** क्या ? क्या ?? क्या ???

विश्वावसु : **(अपनी कमर से तलवार निकालकर उर्वशी की ओर फेंकता है)** अगर आपको विश्वास न हो तो.... अगर यह सच न हो तो.... मैं आपके हाथों मरने को प्रस्तुत हूं । यही मेरी सर्वश्रेष्ठ मुक्ति होगी । **(सिर**

झुकाकर खड़ा हो जाता है)

उर्वशी : क्या ?

विश्वावसु : स्वामिनी ! कुमार आयु सुरक्षित हैं ।.... मैं उन्हें माता इला को सौंप आया ।

उर्वशी : ओह ! **(मूर्च्छित हो जाती है)**

विश्वावसु : **(लपककर बांहों में थामता है । पुरोहितों से)** देख क्या रहे हो मूर्खों ! जल का कमण्डलु इधर बढ़ाओ....

कश्यप कमण्डलु लेकर आगे आता है । विश्वावसु छींटे मारता है । उर्वशी की आंखें खुलती हैं । विश्वावसु संभालकर उसे आसन पर बैठाता है । उर्वशी निस्तब्ध । फिर वह सारे लोगों को अपरिचय की नजरों से देखती है । जैसे उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि वह कहां है । धीरे-धीरे उसकी चेतना लौटती है । विश्वावसु कुछ दूरी पर चुपचाप खड़ा है । कश्यप अपने पीढ़े पर लौटता है । तब उर्वशी आसन का सहारा लेती हुई डगमगाती खड़ी होती है और अपना एक हाथ विश्वावसु की ओर बढ़ाते हुए बोलती है ।

उर्वशी : आओ, मेरे जंजालों के मौन समीक्षक ! आओ, मेरे दुखों के सिंहद्वार ! मेरे दुर्दान्त शत्रु-मित्र ! आओ, मेरे सौभाग्य-हन्ता !.... आओ, मेरे मातृत्व के दुखद संरक्षक ! **(विश्वावसु पास आता है । उर्वशी के चरणों की ओर झुकता है । उर्वशी पीछे हटती है । एक हाथ से विश्वावसु को पकड़कर खड़ा करती है और दूसरे हाथ से एक भरपूर चांटा मारती है । विश्वावसु सन्न रह जाता है । उर्वशी दोनों हाथों में अपना चेहरा ढंक कर फफक पड़ती है)** आह.... आह, मैंने किसको पाया और किसे खो दिया !.... **(और धम्म से आसन में गिर जाती है)**

तभी विंग से बिजली के तेजी से वज्र अपनी छोटी तलवार का निशाना साधे आता है और विश्वावसु की पीठ में, आंतों में कई बार तलवार भोंकता है ।

वज्र : विश्वासघाती.... अधर्मी ।.... निकृष्ट ।.... लेः, लेः, लेः.... ।

विश्वावसु एक भयावह चीख के साथ गिरता है । पुरोहित दौड़कर आते हैं । वज्र उसकी टांगें और पुरोहित हाथ पकड़कर मंच से बाहर ले जाते हैं । उर्वशी आंखें फैलाये देखती है । फिर हथेलियों में चेहरा छिपाती है ।

नवरत्न : यज्ञशाला पवित्र हुई
पृथिवी पवित्र हुई ।

उर्वशी उनकी तरफ देखती है । पुरोहित अपने वस्त्रों से खून के छींटे झाड़ते हुए आते हैं और अपने पीढ़ों पर बैठ जाते हैं । तभी वज्र पुनः मंच पर आता है । सभी आतंकित होकर उसे

देखने लगते हैं । वज्र, नाभाग को अर्थपूर्ण निगाहों से घूरता है । नाभाग एक लिपटा हुआ भोजपत्र हाथ से उठाकर वज्र को दिखाता है । वज्र स्वीकृति में सिर हिलाता है । नाभाग अचानक उठकर तेजी से उर्वशी की ओर दौड़ता है । उर्वशी इस अचानक हमले से घबरा कर बाहर की ओर भागती है । वज्र उसका रास्ता रोकता है । वह दूसरे विंग से भागने का प्रयत्न करती है । उधर से नवरत्न उसे घेर लेते हैं । तभी पांचों पुरोहित उठकर खूंखार मुद्रा में उर्वशी की ओर दौड़ते हैं । सभी उसे घेरे में लेने की कोशिश करते हैं । उर्वशी पूरे मंच पर, भयाक्रांत इधर-उधर भागती है । अचानक पुरोहित और नाभाग मिलकर उसे पकड़ लेते हैं । उर्वशी गिर जाती है । पुरोहित उसके हाथ-पांव, सिर-गर्दन पकड़कर चिपट जाते हैं । विभावक उसके दाहिने हाथ में लेखनी पकड़ाता है । उर्वशी का मुकुट गिर जाता है । उसका सारा श्रृंगार छिन्न-भिन्न हो जाता है । वह संघर्ष करती है । छटपटाती है लेकिन अन्ततः अवश हो जाती है । नाभाग भोजपत्र फैलाता है । विभावक उर्वशी का दाहिना हाथ पकड़कर भोजपत्र तक ले जाता है । एक भयावह आर्त्तनाद के साथ उसका स्वर वातावरण में गूंजता है.... 'नहीं.... नहीं ई ई.... कभी नहीं ई ई'... और फिर उसके बाद वह मूर्च्छित हो जाती है । नाभाग भोजपत्र को ऊपर उठाता है । पुरोहित, नवरत्न और वज्र— सभी खड़े होकर खुशी से चिल्लाते हैं—

नाभाग
नवरत्न
पुरोहित
वज्र : साम्राज्ञी उर्वशी ने मृत्यु-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये....
कर दिये....
कर दिये....

अन्धकार । फिर तुरन्त दाहिने विंग से हथकड़ियों-बेड़ियों की झनझनाहट के साथ पुरूरवा अंधेरे में ही मंच पर प्रकट होता है । उसके ऊपर केन्द्रित तीव्र प्रकाश ।

पुरूरवा : यहां तो चारों ओर ताजे रक्त की गन्ध है ! आर्त्तनाद का सुनसान है ! एक चौंधियाता हुआ अंधेरा फैला है यहां.... । अभी- अभी मुझे लगा था, अग्नि यहां चीत्कार कर रही है । **(पूरे मंच पर प्रकाश फैलता है । पुरूरवा इधर-उधर देखता है । टहलता है । फिर मंच के अग्रभाग में जाकर जैसे दर्शकों को संबोधित करता हुआ बोलता है...)** चारों ओर जो स्थितियां हैं, घटनाएं हैं । यह जो हिमानी सन्नाटा है । यह जो घुटा-घुटा आर्त्तनाद है, यह जो युद्धों की परम्परा से भिन्न एक युद्ध है, यह जो धरती की छाती में धीरे-धीरे रिसता हुआ रक्तपात है.... यह

जो अन्तरिक्ष की ओर उठी हुई आंखें हैं— कहीं उनके भीतर, उनसे सर्वथा सम्पृक्त, संलग्न, आहत— उनसे घिरा हुआ.... कहीं बहुत भीतर.... मुक्ति के इस हहराते समुद्र -गर्भ में— तुम्हारे साथ मैं हूं.... मेरे प्यारे लोगो ! यह जो प्रकोष्ठ के भीतर खुलते प्रकोष्ठ हैं— अतल गहराइयों तक.... उनके भीतर.... सुरक्षित-असुरक्षित, आक्रान्त-अनाक्रान्त.... निर्भय— तुम्हारे साथ.... यह मैं हूं।....

क्या मैं एक रमणीय प्रतीक मात्र हूं ? जिसे सारे गण-प्रतिनिधियों ने चुना था। जिसे विशों ने, पुरों ने, ग्रामों-जनपदों ने, नगरों ने— एक साथ चुना था । जिसने अभिषेक का विरोध किया, जिसने तुम्हारे सिवा लोगो, कोई दूसरा मुकुट धारण नहीं किया। जिसने अग्नि लाकर दी। गणों की सुरक्षा में सैनिक तैनात किये। जिसने जनता के हृदय को दुहने वाले यज्ञों को बन्द किया। जिसने 'बलि' और 'भाग' और 'हवन' को खत्म किया। जिसने दस्युओं और देवों का भेद मिटा दिया। और जो खड़ा है अभी भी — इस प्रग्रहण में भी, मृत्यु के अंधेरे आलोक में भी— तुम्हारी आहत आत्मा और क्रोधभरी, चुप आंखों में.... निर्भ्रान्त.... बिना किसी नींद और विश्राम के.... इस रणभूमि में लगातार। देवलोक से पृथिवी.... पृथिवी से यहां हत्यारे पाताल तक ?
क्या मैं सचमुच एक मूर्त रमणीय प्रतीक मात्र हूं। एक झंझावात.... युद्ध का एक हनहनाता स्वर, जो यों ही गुजर जायेगा। जिसे मेरे प्यारे लोग दूसरों से सुनेंगे। और वे दूसरे किन्हीं और दूसरों से सुनेंगे ? मुक्ति क्या एक हंसती किम्बदंती बन जायेगी ? और इस तरह काल के अनन्त अन्तराल में जो मैं वास्तव में हूं— आपके भीतर से छनकर आया एक निश्चित उद्देश्य.... एक विराट अग्नि-गर्भ.... क्या वह नहीं रह जाऊंगा ? जो मैं हूं.... जिस तरह गुंथा हुआ आप में .... जिस तरह सन्नद्ध —–तड़पता हुआ। क्या चाटुकार पोथियों द्वारा गढ़ी हुई मेरी विकृत मूर्ति, मेरे इस आज के वास्तव पर छा जायेगी ? क्या मैं वही रह जाऊंगा, जो इन्द्र का सारा प्रचार-तंत्र कहता है— विलासी, विध्वंसक, लुटेरा.... पागल ? पछतावे में झुलसता हुआ ? क्या विस्मरण और झूठ के ताल से उलीचा गया.... यह गंदला प्रक्षेप ही सच हो जायेगा ? मैं कहता हूं— नहीं.... नहीं.... नहीं....

लेकिन मैं आपसे पूछता हूं — मेरे भीतर से उठी हुई तुम्हारी यह गूंज कब टंकार बन जायेगी ? कब ? आखिर कब ? ?
(आकाश की ओर हाथ उठाकर) ओह ! यह प्रतीक्षा ! यह अनादि, अनन्त प्रतीक्षा ! मेरे प्यारे लोगो ! बार-बार तुम्हारे समुद्र- गर्भ से जन्म लेने की प्रतीक्षा ! मैं चाहता हूं कि सब कुछ चीर-चार कर बाहर निकल आऊं। सच्चाइयां, यथार्थ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, आकाश, मनुष्य, सन्तान, धर्म— और वह निहंग स्फटिक सत्य— सब मेरी पकड़ में आ जायं। मैं

उन्हें छू लूं, जैसे इस दीवार को छूता हूं। जैसे सन्नाटे को छूता हूं। हवा को छूता हूं। जैसे उर्वशी को छूता हूं। अग्नि को छूता हूं। जैसे मां के खौलते हुए मौन को छूता हूं। जैसे गुरु की इच्छाओं के विशाल ब्रह्माण्ड को छूता हूं। जैसे आप सबके मर्म को छूता हूं।.... मैं उन सभी का स्पर्श करूं, जिनसे मैं रचा गया हूं....। लेकिन यह आज का विकृत और प्रचारित सच हमारे सत्य के विरुद्ध जाता है.... वह गुरुदेव के आत्मन् के विरुद्ध जाता है। और इस चौंधियाती भयहीनता में अनाक्रान्त.... आपको समर्पित.... घिरा हुआ मैं— उस स्फटिक निहंग सत्य की खोज में संवत्सरों, शताब्दियों से, घात लगाये इन पागल भेड़ियों की आंखों में झांकता हूं.... झांकता हूं....।

तभी दाहिने विंग से दो काली आकृतियां प्रकट होती हैं और बांस के चौकोर घेरे के दोनों ओर चमचमाते कुल्हाड़े हवा में ऊपर उठाये आक्रामक मुद्रा में खड़ी हो जाती हैं। फिर बांयें विंग से दो काली आकृतियां दौड़कर आती हैं और पुरूरवा की हथकड़ी में बंधी हुई, लटकती जंजीरें दोनों ओर से पकड़कर पीछे की ओर, चौकोर घेरे की तरफ खींचती हैं।

काली आकृतियां : हम ब्रह्माण्ड को चाटते हैं
हम सूर्य को खाते हैं
हम पृथिवी को चबाते हैं....

पुरूरवा : **(काली आकृतियों के खिंचाव से संघर्ष करता हुआ.... दर्शकों की तरफ आगे बढ़ता हुआ, चीखता है)** मैं फिर लौटूंगा.... मुझे कोई नहीं रोक सकता। कोई नहीं रोक सकता। मैं फिर लौटूंगा.... लौटूंगा.... लौटूंगा....

हवा और अंधेरे में गूंजता हुआ, हांफते हुए पुरूरवा का स्वर।

पर्दा।



उत्थान

दाहिने विंग से वसिष्ठ एक छोटे से बालक को उंगली पकड़ाये हुए प्रवेश करते हैं। उनके साथ ही इला, उत्पलाक्षी, कृष्णनाग, गण-प्रतिनिधि तथा दस-पन्द्रह लोगों का एक छोटा सा-काफिला प्रवेश करता है। इला अचानक बैठ जाती है। उत्पलाक्षी उसे संभालती है। वसिष्ठ झुककर देखते हैं।

वसिष्ठ : क्या हुआ ?

इला : **(आंखें उठाकर पीड़ा से देखती है)** पता नहीं....

वसिष्ठ : **(बारी-बारी से इला के पांव के तलवे देखते हैं)** ओह् ! कांटा चुभ गया है– गोड़खुल है– **(खींचकर निकालते हैं)**

इला : **(हल्के से चीखती है)**.... अभी और कितनी दूर है ?

वसिष्ठ : **(हंसते हैं)** आ गये बस.... **(इशारा करते हैं)** यही एक पहाड़ है।

आयु : आप कब से तो यही कह रहे हैं गुरुदेव !.... यही एक पहाड़ है.... यही एक पहाड़ है....

वसिष्ठ : **(हंसते हैं। दर्शकों की ओर उन्मुख होते हैं)**..... देखिये, हम भाग नहीं रहे हैं। यह एक क्षणिक विराम है- बस। हम एक शरण्य की खोज में हैं। आप लोगों के बीच– आप सबके भीतर.... एक शरण्य की खोज में हैं हम। और हम जानते हैं कि हमें वह मिलेगा.... सिर्फ थोड़ी -सी देर है – सिर्फ थोड़ी-सी। हम आ रहे हैं.... हम पहुंच रहे हैं– इन पहाड़ों के उस ओर.... आप सभी तक पहुंच रहे हैं हम....।
(बालक की ओर घूमकर) .... मेरे नन्हें से देवदारु ! दादी- मां से कहिए .... प्रार्थना का समय हो गया। **(इला उठती है। वसिष्ठ- दर्शकों से)** यह किसी ईश्वर की प्रार्थना नहीं है.... किसी देवता की प्रार्थना नहीं है। चाहें तो आप भी हमारे साथ शामिल हो जाइए। **(सभी अपनी बांहें आकाश की ओर उठाते हैं।**

समवेत स्वर : **मौत के साथियो !**
तुम आंख हो- आंखों में लौटो
रक्त के कटोरे में लबालब लौटो।

तुम हृदय हो.... मौत के साथियो !
हृदय में लौटो
अग्नि- गर्भ ! लौटो।

तुम चित्त हो, विचार हो, गहन मस्तिष्क हो
चित्त के अनहदनाद में लौटो
आहत विचारों में लौटो

गह्वन मस्तिष्क में लौटो ।

मौत के साथियो ! मौत के साथियो !
तुम पृथिवी में जल हो
पृथिवी के रक्त में लौटो ।
सूर्य के पसीने में लौटो ।

मौत के साथियो !.... मौत के साथियो !
फूलों की अग्रिम सुगन्धि में लौटो
बच्चों के निर्णय में लौटो
सुबह की गुलाबी हवा में लौटो
माइओं के दूध में लौटो....
यौवन की तनी हुई धूप में लौटो
संझा के लहू- आंगन में लौटो
बावरे बुढ़ापे में लौटो ।

लौटो....
निर्जन में लौटो
कोलाहल में लौटो
फटेहाल लौटो
पत्थर में लौटो
सिंह की दहाड़ में
ढले हुए लौटो ।

मौत के साथियो !
यम की आंतों को फाड़कर
लौटो....

(अन्धकार । पर्दा)

★

दूधनाथ सिंह

जन्म : 17 अक्तूबर, 1936। **जन्म-स्थान** : उत्तर-प्रदेश के बलिया ज़िले का एक गाँव—सोबन्था। एक सामान्य किसान-परिवार में। **शिक्षा** : एम० ए० (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)। **कार्य** : इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन। **पता** : 3-सी, कॉंसिल्स रोड, इलाहाबाद।



रचनाएँ : **कहानी-संग्रह**—सपाट चेहरे वाला आदमी। सुखान्त। पहला कदम। एक दूसरे गांधी की हत्या। **कविता-संग्रह**—अपनी शताब्दी के नाम। सुरंग से लौटते हुए। एक और भी आदमी है। **आलोचना**—निराला : आत्महन्ता आस्था। उचित अनुचित। **नाटक**—यमगाथा। **पत्रिका**—पक्षधर (एक अंक। आपात्काल में ज़ब्त)।